सम्पादकीय

श्रम-कानूनों में भारी बदलाव : मजदूर हितों पर हमला

हमारे देश की अर्थव्यवस्था गहरे ढाँचागत संकट की गिरफ्त में है। अर्थव्यवस्था की स्थिति बतानेवाले सभी स्थापित पैमाने इस सच्चाई का इजहार कर रहे हैं। काफी समय तक विकास दर और बेरोजगारी के आँकड़े छुपाके और उनमें फेरबदल करके अर्थव्यवस्था के बिगड़ते स्वास्थ्य पर पर्दा डालने के बाद अब सरकारी अर्थशास्त्री और विभिन्न सरकारी संस्थान भी गम्भीर आर्थिक मन्दी की कड़वी सच्चाई को स्वीकार करने पर मजबूर हैं। आर्थिक संकट का सबसे असह्य बोझ और घातक परिणाम मजदूर वर्ग को ही झेलने पड़ते हैं। दिनोंदिन गहराते इस आर्थिक संकट को हल करने के नाम पर केन्द्र सरकार ने पूँजीपति वर्ग और मजदूर वर्ग के प्रति जो रवैया अपनाया है, उसने इस बात को एक बार फिर सही साबित किया है। एक तरफ, इस संकट से उबारने के बहाने देशी-विदेशी पूँजीपतियों को तरह-तरह की रियायतें, सहूलियतें और करों में छूट का तोहफा दिया गया, तो दूसरी तरफ श्रम कानूनों में भारी फेरबदल करके पहले से ही चरम शोषण के शिकार मजदूरों के रहे-सहे अधिकारों में कटौती की गयी और उन्हें गुलामों से भी बदतर हालात में धकेलने का कुचक्र रचा गया।

देशी-विदेशी पूँजीपति काफी अरसे से "व्यवसाय करने में आसानी" और "विदेशी पूँजी निवेश को रिझाने" के नाम पर श्रम कानूनों मे "पूँजीपतियों के अनुकूल" बदलाव लाने की माँग कर रहे थे। पूँजीपतियों के सबसे बड़े संगठन फिक्की ने 2014 के संसदीय चुनाव से पहले सभी प्रमुख राजनीतिक पार्टियों के सामने श्रम कानूनों में बदलाव को लेकर अपना प्रस्ताव पेश किया था। उनकी मंशा बिलकुल साफ थी-- मजदूरों को संगठित होने और सघर्ष करने के कानूनी अधिकारों से वंचित करके तथा उनके वेतन-भत्तों और सहूलियतों में भारी कटौती करके उनके खून-पसीने को सिक्के में ढालने की रफ्तार को और ज्यादा तेज करना। 2014 में सत्ता में आने के बाद से ही नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा गठबन्धन सरकार ने श्रम कानूनों को बदलना शुरू किया। 2019 में दूसरी बार सत्ता में आने के बाद मोदी सरकार ने फिक्की के सुझावों पर अमल करते हुए श्रम कानूनों को और तेजी से बदलना शुरू किया। इसके तहत केन्द्र सरकार के दायरे में आनेवाले 44 कानूनों और राज्य सरकारों के अधीन 100 से अधिक कानूनों को चार संहिताओं में सीमित कर दिया। ये सहिताएँ हैं-- (1) मजदूरी के बारे में संहिता 2017, (2) औद्योगिक सम्बन्ध कानून पर श्रम संहिता 2015, (3) सामाजिक सुरक्षा पर मसविदा श्रम संहिता और (4) पेशागत सुरक्षा, स्वास्थ्य और काम की दशा के बारे में श्रम संहिता 2018। इसमें से पहले, यानी मजदूरी से सम्बन्धित संहिता को संसद में चुपके से पास करा लिया गया, बाकी तीनों को पास कराने की तैयारी चल रही है। पिछले दिनों एक के बाद एक, जितने जनविरोधी कानून संसद में पारित किये गये, उन्हें देखते हुए इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये सभी कानून बिना किसी व्यवधान या शोर-शराबे के पास करा लिये जाएँगे।

इन संहिताओं के सैकड़ों पन्नों में भरे हुए शब्दजाल में से मजदूर वर्ग की जिन्दगी को प्रभावित करनेवाले बदलावों को रेखांकित करना एक कठिन काम है। यहाँ हम उनमें से कुछ प्रावधानों और उनके घातक परिणामों को चिन्हित करने का प्रयास करेंगे।

संगठित होने और संघर्ष करने के कानूनी अधिकारों पर हमला

अपने 100 सालों के संघर्षों और कुर्बानियों के दम पर मजदूर वर्ग ने संगठन बनाने तथा उसके माध्यम से सामूहिक मोलभाव और संघर्ष करने का अधिकार हासिल किया था, जिसे इस बदलाव के जरिये एक झटके में छीन लिया गया। अब तक ट्रेड यूनियन का पंजीकरण कराने के लिए किसी उद्योग या कम्पनी के सिर्फ सात कामगारों द्वारा आवेदन किये जाने का प्रावधान था। अब इसके लिए 10 प्रतिशत या कम से कम 100 कामगारों का हस्ताक्षर जरूरी होगा। जाहिर है कि पहले जहाँ सिर्फ 7 लोग अपनी नौकरी को जोखिम में डालकर यूनियन बनाने का बीड़ा उठा सकते थे, वहीं अब बड़ी संख्या में यूनियन बनाने की पहल करने वाले कामगारों की सूची मैनेजमेंट के हाथ लग जाएगी। पिछले कुछ वर्षों के दौरान मारुति उद्योग सहित तमाम उद्योगों में ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं के दमन-उत्पीड़न और उन्हें नौकरी से निकाले जाने की जितनी घटनाएँ सामने आयी हैं, उन्हें देखते हुए यह समझना कठिन नहीं कि इस नये कानूनी बदलाव के कारण यूनियन बनाना असम्भव नहीं भी, तो बेहद दुस्साध्य जरूर हो गया है।

यूनियन बनाने की प्रक्रिया को भी काफी कठोर बना दिया गया है, क्योंकि अब कोई भी सक्षम अधिकारी कामगारों के आवेदन को रद्द कर सकता है। इसके बाद उन्हें लम्बी और खर्चीली कानूनी कार्यवाही में उलझना पड़ेगा, यानी एक बार आवेदन रद्द हो जाने के बाद कामगारों के लिए नये सिरे से यूनियन बनाने की प्रक्रिया पूरी करना दुश्वार हो जाएगा। एक प्रावधान यह भी है कि यूनियन के निकाय में अब केवल दो बाहरी लोग ही रह पायेंगे। पहले मजदूरों-कर्मचारियों का यह जनतांत्रिक अधिकार था कि वे अपने यूनियन में कितने भी बाहरी लोगों को शामिल करें। अब तक का इतिहास यही है कि मजदूरों के नेता या कार्यकर्ता, चाहे वे किसी भी विचारधारा को माननेवाले हों, अपने सांगठनिक अनुभव और समर्पण के दम पर ऐसे मजदूरों को यूनियनों में संगठित करते रहे हैं, जिनकी चेतना और समझदारी यूनियन बनाने तथा अपने सामूहिक हितों की लड़ाई लड़ने तक न पहुँची हो या वे यूनियन बनाने के चलते अपनी नौकरी को दाँव पर लगाने की स्थिति में न हों। इस कानूनी बदलाव के बाद किसी नये प्रतिष्ठान में, खास तौर पर असंगठित क्षेत्र में यूनियन बनाने का काम बेहद कठिन हो गया। दूसरी तरफ, इस संहिता के मुताबिक किसी क्षेत्र के सिर्फ 7 मालिक पूँजीपति मिलकर अपना यूनियन बना लेंगे। इसका सीधा अर्थ यही है कि कानूनी रूप से संगठित मालिक असंगठित मजदूरों के सामने अपनी मनमानी शर्तें रख सकेंगे और उन्हें कम से कम मजदूरी पर ज्यादा से ज्यादा काम करने के लिए मजबूर करेंगे।

हड़ताल से 14 दिन पहले नोटिस देने का नियम पहले सिर्फ उन उद्योगों में था, जिनको 'आवश्यक सार्वजनिक सेवा' के अधीन रखा गया हो, लेकिन अब यह सभी क्षेत्रों में लागू होगा। साथ ही, एक दिन की हड़ताल के लिए मालिकों को आठ दिन की मजदूरी काटने का अधिकार होगा। इस तरह मजदूरों के संगठित प्रतिवाद का एकमात्र हथियार हड़ताल को रोकने के लिए इस नये कानूनी बदलाव ने मालिकों के दमनकारी पंजों को काफी मजबूत बना दिया गया। कुल मिलाकर इन बदलावों से मजदूरों को संगठित होने और संघर्ष करने का अधिकार छीनकर सरकार ने पूँजीपतियों के शोषण-उत्पीड़न को पहले से भी ज्यादा क्रूर और नृशंस बना दिया है।

मालिकों को जब मर्जी भरती करने, जब मर्जी निकालने का अधिकार

मोदी सरकार द्वारा श्रम कानूनों में किये गये बदलावों में सबसे घातक है -- "निश्चित अवधि के लिए अस्थायी रोजगार देने का प्रावधान"। वैसे तो पिछले 20-25 सालों के दौरान स्थायी रोजगार में भारी कमी आयी है, ज्यादातर नौकरियाँ अस्थायी या ठेका मजदूर या निविदाकर्मी की ही रह गयी हैं, चाहे सरकारी विभाग हो या निजी कम्पनी, संगठित क्षेत्र हो या असंगठित क्षेत्र, लेकिन अब इस अन्यायपूर्ण प्रावधान पर कानूनी मुहर लगा दी गयी है। चूँकि पहले श्रम कानून में अस्थायी 'नौकरियों को स्थायी करने की व्यवस्था दी गयी थी, इसलिए अस्थायी मजदूर-कर्मचारी अपनी नौकरी को स्थायी करने की माँग उठाते और संघर्ष करते थे। कई मामलों में उन्हें सफलता भी मिलती थी। लेकिन इस कानूनी बदलाव के बाद अब हर जगह अस्थायी और ठेका मजदूर रखने को कानूनी बना दिया गया है।

एक बदलाव यह भी हुआ है कि अब से 300 कामगारों वाली फैक्ट्री में तालाबन्दी और छँटनी के लिए सरकार से इजाजत लेनी जरूरी नहीं होगी। पहले यह प्रावधान 100 कामगारों वाली फैक्ट्री में ही था। जहाँ तक 300 से अधिक कामगारों वाली फैक्ट्री में छँटनी-तालाबन्दी के लिए इजाजत लेने का सवाल है, नये कानून के मुताबिक वहाँ भी अगर सरकारी अधिकारी 60 दिन तक अनुमति नहीं देते तो खुद-ब-खुद स्वीकृति मान ली जायेगी, यानी फर्क बस यही है कि 300 से अधिक कामगारों वाली फैक्ट्री के मालिक यदि अधिकारियों को जल्दी नहीं पटा पाये तो उन्हें 60 दिन तक इन्तजार करना होगा। जाहिर है कि अब रोजगार सुरक्षा की कोइ गारण्टी नहीं रह गयी है।

पिछले कुछ महीनों में ऑटो सेक्टर और उत्पादन के अन्य क्षेत्रों में इसी कानून का फायदा उठाते हुए लाखों मजदूरों की नौकरियाँ रातोंरात छीन ली गयी हैं। हीरो होण्डा, मानेसर के छँटनीग्रस्त मजदूर दो महीने से भी अधिक समय से संघर्षरत हैं, लेकिन उनकी कहीं कोई सुनवाई नहीं हो रही है। इस कानूनी बदलाव से सरकार ने पूँजीपतियों की इस मनोकामना को पूरा करने में सहायता की है कि जब तक मजदूर अपने श्रम से उनकी तिजोरी भरते रहें, तब तक वे उनका शोषण करें और जब ऐसा न हो तो उन्हें मरने के लिए सड़कों पर फेंक दें।

संसद में पहले ही पारित हो चुके इस नये कानूनी फेरबदल के अनुसार, अब न्यूनतम वेतन पर पाँच साल के बाद ही पुनर्विचार किया जाएगा, भले ही इस बीच महँगाई में जितनी भी बढ़ोतरी क्यों न हो जाये। दूसरी बात यह कि पहले निर्धारित न्यूनतम वेतन न देने वाले मालिकों के लिए जेल की सजा का प्रावधान था, जो अब केवल आर्थिक जुर्माने तक सीमित कर दिया गया है।

अब से पहले न्यूनतम वेतन का निर्धारण करने वाला प्रमुख कारक भोजन में न्यूनतम कैलोरी की मात्रा और उतनी भोजन सामग्री का बाजार मूल्य होता था। इसकी जगह अब काम में कुशलता का स्तर, काम की कठिनाई और कार्यस्थल की भौगोलिक

स्थिति जैसे कारकों से न्यूनतम मजदूरी तय होगी। भोजन पर होने वाला खर्च अब गौण कारक हो गया है।

मजदूरों की सभी श्रेणियों-- जैसे स्थायी, अस्थायी, ठेका मजदूर, घरेलू कामगार, दिहाड़ी मजदूर, सबको सेवानिवृत्ति के बाद मिलने वाले कोष, जैसे-- पेंशन, प्रोविडेंट फण्ड, इलाज इत्यादि को सरकार के अधीन एक ही कोष में केन्द्रित कर दिया गया है। प्रोविडेंट फण्ड एक्ट 1925 के तहत स्वायत्त संस्था इपीएफओ द्वारा प्रबन्धित सेवानिवृत्ति कोष को अब सीधे श्रम मंत्रालय के अधीन कर दिया गया है। इसकी पूरी कोशिश हो रही है कि उसके एक हिस्से को शेयर बाजार में लगा दिया जाये।

सरकार की मंशा पूँजीपतियों के हित में मजदूरों को नौकरी के दौरान कम से कम मजदूरी तय करना और सेवानिवृत्ति के बाद उन्हें कम से कम भविष्यनिधि का भुगतान करना है। उलटे सरकार उनकी जीवन भर की बचत और भविष्यनिधि कोष को सट्टेबाजी में दाँव पर लगाने का भी मंसूबा बना रही है।

यह बात किसी से छिपी नहीं है कि मजदूरों की जिन्दगी को बुरी तरह प्रभावित करने वाले इन कानूनी बदलावों के पीछे किन ताकतों का हित है और सरकार किसके इशारे पर ये कारगुजारियाँ कर रही है। सच तो यह है कि मोदी सरकार की डोर साम्राज्यवादी वैश्विक पूँजी और उनके देशी संश्रयकारियों के हाथों में है। जैसा कि पहले जिक्र किया गया है, 2014 के संसदीय चुनाव से पहले भारतीय पूँजीपतियों के सबसे बड़े संगठन फिक्की ने नियोक्ताओं के अखिल भारतीय संगठन एआईओई के समर्थन से "श्रम कानूनों को पूँजी निवेश और रोजगार हितैषी बनाने" के उद्देश्य से "श्रम कानूनों में बदलाव के बारे में टिप्पणी" नाम से अपना प्रस्ताव चुनावी मैदान में उतरी प्रमुख पार्टियों के सामने रखा था। उनकी प्रमुख माँगें थीं-- (1) सभी श्रम कानूनों को चार शीर्षकों में सरल ढंग से समेटा जाना; (2) मालिकों को निश्चित अवधि के लिए, न कि स्थायी रूप से कामगारों की नियुक्ति करने का अधिकार देना; (3) सभी तरह के कामों के लिए ठेका मजदूरों की भर्ती का अधिकार देना; (4) फैक्टरी में तालाबन्दी और छँटनी के लिए सरकार से पूर्व अनुमति लेने की अनिवार्यता को खत्म करना और (5) सभी उद्योगों में हड़ताल के लिए 14 दिन पहले सूचना देना अनिवार्य बनाना। मोदी सरकार ने इन सुझावों पर 2014 से ही काम करना शुरू कर दिया था। दूसरी बार सत्ता में आने के बाद मोदी सरकार ने इन कानूनी बदलावों के लिए एँड़ी-चोटी का जोर लगा दिया।

सच तो यह है कि फिक्की और एआईओई जैसी देशी पूँजीपतियों की संस्थाओं ने भी सरकार को श्रम कानूनों में बदलाव के लिए जो सुझाव दिये हैं, उसका असली स्रोत विश्व बैंक जैसी साम्राज्यवादी संस्थाओं के सुझाव हैं, जो मौजूदा नव-उदारवादी, यानी आर्थिक नव-औपनिवेशवादी दौर की नीतियों को सूत्रबद्ध करती है। विश्व बैंक के परिप्रेक्ष्य दस्तावेज "इण्डिया डेवलपमेंट अपडेट", मार्च 2018 में यह निष्कर्ष दिया गया है कि "भारत को अपनी प्रतिस्पर्धा बेहतर बनाने के लिए कई पूर्वशर्तों में से प्रमुख है-- अवरचनागत ढाँचे को बढ़ावा देना" ताकि इसे विश्व के मौजूदा विनिर्माण केन्द्रों के स्तर पर लाया जा सके। इसके साथ ही जमीन, श्रम और वित्तीय बाजार में बदलाव भी जरूरी हैं, ताकि प्रमुख उत्पादन लागत की प्रतिस्पर्धी आपूर्ति का जारी रखना सुनिश्चित हो, जैसे-- "मजदूर, जमीन, वित्त और कौशल"। इस सुझाव पर भारत सरकार ने कितने काम किये, इस बारे में स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया की शोध टीम ने जून 2019 को बताया कि "वैसे तो देश में औद्योगिक विवाद के मामले पहले ही काफी कम हुए हैं, लेकिन दूसरे देशों की तुलना में आज भी बहुत ज्यादा हैं... एक साथ कई लोगों को नौकरी से बर्खास्त करने के लिए पहले स्वीकृति लेने की जरूरत भारत और श्रीलंका को छोड़कर किसी भी दूसरे देश में नहीं होती... मौजूदा श्रम कानूनों का पालन करने में नियोक्ताओं द्वारा चुकायी जाने वाली ऊँची कीमत तथा केन्द्र और राज्य स्तर के विभिन्न श्रम कानूनों की जटिलता को ध्यान में रखते हुए केन्द्र सरकार ने हाल ही में उन्हें आसान और प्रभावी बनाने वाली नीतियाँ लागू की हैं। सरकार श्रम कानूनों को कहीं ज्यादा सरल और तार्किक बनाने के लिए प्रयासरत है।"

इन तथ्यों की रोशनी में यह समझना कठिन नहीं कि किनके सुझावों का अक्षरशः पालन करते हुए मोदी सरकार ने श्रम कानूनों में इतने भारी बदलाव किये हैं। ये बदलाव देशी-विदेशी पूँजीपतियों के लिए वरदान और मेहनतकश जनता के लिए अभिशाप हैं। मोदी के "न्यूनतम शासन, अधिकतम प्रशासन" का नारा पूँजीपतियों के लिए है, मजदूरों के मामले में इस नारे का मतलब कठोर शासन और निष्ठुर प्रशासन ही है।

आज दुनिया भर में अर्थव्यवस्था जिस असाध्य संकट की गिरफ्त में है, उससे निजात पाने के लिए पूँजीपति वर्ग मजदूर वर्ग के शोषण की रफ्तार बढ़ाने के अलावा अपने आपको बचाने का कोई और उपाय नहीं देखता है। श्रम कानून में बदलाव की यही वजह है।

दुनिया भर में मजदूर वर्ग के संघर्षों का इतिहास बताता है कि किसी वर्ग के हित में या उसके खिलाफ बनने वाले कानून उस दौर के वर्ग शक्ति सन्तुलन को प्रतिबिम्बित करते हैं। अब तक मजदूरों को जो भी कानूनी सुरक्षा हासिल थी, वह मजदूरों के संगठित सामूहिक संघर्ष का परिणाम थी। आज अगर मोदी सरकार इसे इतनी आसानी से छीन ले रही

है तो यह इस बात का नतीजा है कि आज देश और दुनिया में मजदूरों और पूँजीपतियों के बीच के शक्ति सन्तुलन में मजदूर वर्ग का पलड़ा हल्का हुआ है। इस स्थिति को पलटने के लिए मजदूर वर्ग को अपनी चेतना, एकजुटता और संगठन का स्तर ऊँचा करना अनिवार्य होगा। मजदूर वर्ग अपनी ही नहीं, पूरी दुनिया की स्थिति को बदल सकता है, बशर्ते वह अपने ऐतिहासिक मिशन को एक बार फिर जमीन पर उतारने के लिए संकल्पबद्ध हो जाये।

श्रम कानून में मजदूर विरोधी चरम शोषणकारी बदलावों को लेकर देश भर के मजदूरों में आक्रोश व्याप्त है। छँटनी-तालाबन्दी के खिलाफ देश के अलग-अलग हिस्सों में आन्दोलन हुए और आज भी चल रहे हैं। 8 जनवरी को भाजपा समर्थक भारतीय मजदूर संघ को छोड़कर शेष सभी प्रमुख ट्रेड यूनियनों ने संयुक्त रूप से देशव्यापी हड़ताल का आह्वान किया, जिसमें करोड़ों मजदूरों ने हिस्सेदारी की। हालाँकि ऐसी आनुष्ठानिक कार्रवाइयों के दम पर पूँजी के चौतरफा हमले से मजदूर वर्ग की हिफाजत नहीं हो सकती।

लम्बे समय तक यूनियनों की लड़ाई जिस अर्थवाद, कानूनवाद के दायरे में सीमित रही है, वह मरणासन्न पूँजीवाद के इस दौर में कारगर नहीं रह गया है। निश्चय ही नव उदारवादी दौर में जिस तरह पूँजीपति वर्ग अपनी रणनीति बदलता जा रहा है, उसी के अनुरूप मजदूर संगठनों को भी अपने संघर्ष के तौर-तरीकों में तब्दीली लाना निहायत जरूरी है। पूँजी के चौतरफा हमले के खिलाफ मजदूर वर्ग की लड़ाई का देशव्यापी, व्यवस्था विरोधी प्रतिरोध संघर्ष की ओर बढ़ना लाजिमी है। यही इतिहास की गति है।

गाँधी की हत्या के बारे में लॉर्ड माउंटबेटन का कहना था--

'ब्रिटिश हुकूमत अपने काल पर्यन्त कलंक से बच गयी, आपकी हत्या आपके देश, आपके राज्य, आपके लोगों ने की है। यदि इतिहास आपका निष्पक्ष मूल्यांकन कर सका, तो वो आपको ईसा और बुद्ध की कोटि में रखेगा। कोई कौम इतनी कृतघ्न और खुदगर्ज कैसे हो सकती है जो अपने पिता तुल्य मार्गदर्शक की छाती छलनी कर दे। ये तो नृशंस बर्बर नरभक्षी कबीलों में भी नहीं होता है, और उस पर निर्लज्जता ये कि हमें इस कृत्य का अफसोस तक नहीं है।'

पाठकों से अपील

❑ **'देश-विदेश' अंक 34 आपके हाथ में है। हमारा प्रयास है कि इसे अनियतकालीन पत्रिका की जगह हर तीन माह पर नियमित प्रकाशित किया जाये।**

❑ **जिन साथियों को पत्रिका निरन्तर डाक से भेजी जा रही है, वे कृपया सूचित करें कि उन्हें पत्रिका मिल रही है या नहीं और उन्हें आगे से भेजी जाये या नहीं।**

❑ **देश-विदेश अव्यवसायिक पत्रिका है। यह साथियों के श्रम और सहयोग से ही प्रकाशित होती है। आर्थिक संकट से जूझते हुए अब तक हमने 34 अंक निकाले। पाठकों के सहयोग से ही यह सम्भव हो पाया।**

❑ **पत्रिका अभी भी अनियमित है, इसलिए नियमित चन्दे की दर तय करना सम्भव नहीं। डाक से मँगवाने के लिए 4 अंकों की सहयोग राशि 150 रुपये या आजीवन सदस्यता न्यूनतम 2000 रुपये निम्नलिखित बैंक खाते में अन्तरित करें और इसकी सूचना एसएमएस या ईमेल से भेज दें।**

नाम : अतुल कुमार गुप्ता
मोबाइल नं. 9810104481
S.B. AC : 601510100024041
IFSC : BKID 0006015
बैंक ऑफ इण्डिया,
जीटी रोड, शाहदरा, दिल्ली-32

मनी ऑर्डर भेजने का पता है-

अतुल कुमार गुप्ता
1/4649/45 बी, गली नं. 4,
न्यू मॉर्डन शाहदरा
दिल्ली- 110032

नागरिकता संशोधन कानून और जनसंख्या रजिस्टर

-- अमित इकबाल

पिछले साल दिसम्बर में गृहमंत्री अमित शाह ने राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर (एनआरसी) को पूरे देश में लागू करने की घोषणा की। इसके साथ ही उन्होंने इस प्रक्रिया को बेहतर बनाने के लिए नागरिकता संशोधन विधेयक (सीएबी) भी संसद के दोनों सदन में पारित करवाया, जो अब नागरिकता संशोधन कानून (सीएए) बन गया है। सरकार का कहना है कि यह कानून किसी को भी नागरिकता से वंचित करने के लिए नहीं, बल्कि पाकिस्तान, अफगानिस्तान और बांग्लादेश से धार्मिक उत्पीड़न के चलते आये हुए धार्मिक अल्पसंख्यकों को भारतीय नागरिकता देने का औजार है। उन धार्मिक समूह के नाम गिनवाते हुए गृहमंत्री ने संसद में कई बार मुस्लिम और यहूदी समुदाय का नाम न लेकर स्पष्ट कर दिया है कि यह कानून इन तीन देशों से आये हुए मुस्लिमों को नागरिकता नहीं देगा।

सीएए बनने के तुरन्त बाद देश के सभी छोटे-बड़े शहरों और कस्बों में इसके खिलाफ आन्दोलन शुरू हो गये। पहले तो प्रधनमंत्री ने आन्दोलनकारियों को कपड़ों से पहचानने की बात करके एक विवाद को जन्म दे दिया। लेकिन बाद में सरकार आन्दोलन के ताप-तेवर से घबरा गयी। आन्दोलन पर ठण्डा पानी डालने के लिए प्रधानमंत्री को कहना पड़ा कि एनआरसी लागू करने की बात हुई ही नहीं और राष्ट्रीय जन पंजीकरण (एनपीआर) की कार्रवाई अब तक शुरू नहीं की गयी है। इससे उलट गृहमंत्री कई बार सीएए और एनआरसी को जोड़कर देखने की बात कर चुके हैं और उन्होंने अपने भाषणों में कहा भी था कि हमें क्रोनोलॉजी को समझना चाहिए कि पहले सरकार सीएए लाएगी और उसके बाद एनआरसी करेगी। यहाँ गृहमंत्री और प्रधनमंत्री की बातें एक-दूसरे की विरोधाभासी नजर आ रही हैं। लोगों को लगा कि इनमें से कोई एक जरूर सच को छिपा रहा है। इसके साथ ही पिछले एक महीने से महिलाओं के नेतृत्व में देशव्यापी आन्दोलन जोर पकड़ता जा रहा है। दिल्ली स्थित 'शाहीन बाग का धरना' इसका प्रतीक बन गया है।

आन्दोलन से घिर चुकी और चारों तरफ आलोचनाओं से घबराकर सत्ता पक्ष के नेताओं ने कहना शुरू किया कि आन्दोलनकारियों को सीएए और एनआरसी के बारे में पता नहीं है और कुछ लोगों ने उन्हें गुमराह कर दिया है। लेकिन इस आन्दोलन को देश के नामी वकील और हाई कोर्ट के रिटायर्ड जज का भी समर्थन प्राप्त था, जिन्होंने सीएए और एनआरसी का सच लोगों के सामने खोलकर रख दिया। यहाँ हम इनके कानूनी और आर्थिक पहलू के बारे में भी चर्चा करेंगे।

एनआरसी का इतिहास

1947 के खूनी बँटवारे के समय असम से सटा हुआ बंगाल (जो पहले पूर्वी पाकिस्तान बना, अब बांग्लादेश है) से लोग जान बचाने के लिए या उससे बहुत पहले रोजगार के लिए असम में आकर बस गये थे। इसे ही ध्यान में रखते हुए 1951 में एनआरसी की प्रक्रिया सबसे पहले असम में चलायी गयी थी। इस पंजीकरण का मकसद पलायन से आये लोगों को चिन्हित करना था। उस दौरान जो एनआरसी की गयी उसकी प्रक्रिया में भारी गड़बड़ी थी, जिसके चलते रजिस्ट्रार जनरल ऑफ सेन्सस के आदेश से एनआरसी और जनगणना सूची को मिलाने की प्रक्रिया को भी बन्द कर दिया गया। 1970 में गुवाहाटी उच्च न्यायालय ने एक मामले में एविडेंस एक्ट-1872 के तहत एनआरसी को किसी भी प्रकार का सबूत मानने से इनकार कर दिया था। इस तरह हम देखते हैं कि एनआरसी शुरू से ही विवादों में घिरी रही और लगातार इसकी वैधता पर सवाल उठाये जाते रहे हैं।

मौजूदा कानून क्या कहता है?

2019 लोकसभा चुनाव में भाजपा के वादों में से मुख्य था-- देश भर में नागरिकता पंजीकरण को लागू करना। यानी "घुसपैठियों" को चिन्हित करना और उन्हें राज्यहीन व्यक्ति घोषित करके देश से बाहर कर देना या डिटेंशन सेण्टर में डाल देना। इस कड़ी का पहला कदम संसद में नागरिकता संशोधन कानून (सीएए) को पारित करके उठाया गया। इसके बारे में गृहमंत्री ने बताया कि पाकिस्तान, आफगानिस्तान और बांग्लादेश के धार्मिक अल्पसंख्यक यानी हिन्दू, सिक्ख, जैन, बौद्ध, पारसी और ईसाई समुदाय के लोग

अगर अपने देश में धार्मिक उत्पीड़न के शिकार होकर भारत की नागरिकता लेना चाहेंगे तो कुछ शर्तों के आधार पर इन्हें नागरिकता दी जाएगी। स्पष्ट था कि इसमें मुसलमान शामिल नहीं हैं। तब से यह सवाल उठाया जाने लगा कि क्या यह कानून हमारे संविधान की मूल आत्मा पर चोट नहीं है? क्या यह संविधान के धर्म-निरपेक्ष स्वरूप पर हमला नहीं है? क्या श्रीलंका में तमिल समुदाय, म्यांमार में रोहिंग्या समुदाय, तिब्बत (चीन) से आये बौद्ध समुदाय और नेपाल से आर्थिक तबाही के चलते भारत आये हुए लोग पीड़ित नहीं हैं? बांग्लादेश, पाकिस्तान और अफगानिस्तान में इस्लामी कट्टरपन्थ के खिलाफ लड़नेवाले मुस्लिमों को भारत आने पर नागरिकता क्यों नहीं दी जानी चाहिए? क्या अफगानिस्तान के हाजरा और पाकिस्तान के अहमदिया समुदाय उत्पीड़ित नहीं हैं? देश भर में ऐसे कई सवाल मौजूदा कानून को लेकर उठाये जाने लगे।

नये सीएए कानून के अनुसार 31 दिसम्बर, 2014 से पहले पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान से आये अल्पसंख्यकों को नागारिकता दी जायेगी। लेकिन सरकार ने इस खास तारीख के ऐतिहासिक महत्त्व को स्पष्ट नहीं किया। सवाल उठता है कि क्या 2014 से पहले भारत कुछ और था?

हमारे संविधान के अनुच्छेद 5 से 11 तक नागरिकता पर चर्चा की गयी है और किन शर्तों पर किसी व्यक्ति को नागरिकता दी जाएगी, उसका प्रावधान भी स्पष्ट शब्दों में बताया गया है। इनमें से कहीं भी धर्म को नागरिकता का आधार नहीं बताया गया, बल्कि नागरिकता देने की शर्त के आधार पर किसी भी धर्म के अनुयायी व्यक्ति को नागरिकता देने का प्रावधान है। किसी देशवासी को उसकी नागरिकता प्रमाणित करने के लिए कहना संविधान के अनुच्छेद 5 का उलंघन है। अनुच्छेद 5 में यह माना गया है कि जो भी बच्चा इस देश की मिट्टी में पैदा होगा, वह स्वाभाविक रूप से नागरिक होगा। इसे ही कानूनी परिभाषा में *जोस सूली* कहा जाता है।

अनुच्छेद 14 में कहा गया है कि राज्य भारतीय क्षेत्र के अन्दर कानून के सामने किसी व्यक्ति की बराबरी और कानून की समान रक्षा की जिम्मेदारी को खारिज नहीं कर सकता। ऐसे में नागरिकता के पूरे खेल में जिन्हें अपनी नागरिकता साबित करना नामुमकिन होगा, अनुच्छेद 14 के तहत उनके भी सारे अधिकार होंगे और उन्हें किसी फरमान के तहत, गैर-मतदाता घोषित करना, जेल में डालना या किसी और देश में भेजना अनुच्छेद 14 के ही खिलाफ है। लेकिन देश के अलग-अलग हिस्सों में या तो डिटेंशन सेण्टर बने हैं या बनाये जा रहे हैं।

नागरिकता कानून की धारा 6क के तहत, पाकिस्तान से आये किसी व्यक्ति को उसके या उसके माता-पिता में से कोई एक, या उसके दादा-दादी/नाना-नानियों में से कोई एक अगर भारत (गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया एक्ट, 1935 में परिभाषित) में पैदा हुआ है तो उन्हें भारत की नागरिकता दी जा सकती है। गौर करने वाली बात यह है कि इसमें धर्म का कोई जिक्र नहीं है। लेकिन नये सीएए में धर्म के आधार पर नागरिकता का प्रावधान है, जो इस अनुच्छेद के खिलाफ है। इसकी संवैधानिक वैधता को हाल ही में चुनौती दी गयी है और अभी सर्वोच्च न्यायालय का संवैधानिक बेंच उस पर काम कर रहा है।

न्याय व्यवस्था की एक बुनियादी प्रक्रिया है कि किसी व्यक्ति या समूह को दोषी साबित करने की जिम्मेदारी आरोप लगाने वाली संस्था (व्यक्ति या समूह) की है। आरोपित व्यक्ति या समूह की जिम्मेदारी नहीं है कि वह खुद को निर्दोष साबित करे। जैसा कि असम में हुआ है, नागरिकता के इस खेल में तस्वीर उलटी है। खुद को नागरिक साबित करने के लिए सवा तीन करोड़ असम निवासियों को कई साल दफ्तरों के चक्कर काटने पड़े। प्रस्तावित देशव्यापी एनआरसी लागू होने के बाद, जिसे गृहमंत्री अपने भाषणों में बार-बार दुहरा चुके हैं, सवा सौ करोड़ निवासियों को भी यही कहा जाएगा कि वे साबित करें कि उन्हें देश की नागरिकता से बाहर क्यों न कर दिया जाये।

इन्हीं कानूनी समस्याओं के चलते मौजूदा सीएए पर देश के बड़े हिस्से का विश्वास नहीं रहा। सीएए के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट में 144 याचिकाएँ दायर की गयी हैं, जिनमें इस कानून पर रोक लगाने की बात की गयी है। हालाँकि सुप्रीम कोर्ट ने रोक लगाने से इनकार कर दिया, लेकिन कोर्ट ने सरकार को सभी याचिकाओं का जवाब देने के लिए चार हफ्ते का समय दिया है। यह मामला अभी कोर्ट में चल रहा है।

पूरी प्रक्रिया बेहद महँगी है

असम में पूरी प्रक्रिया को सम्पन्न करने के लिए 52 हजार कर्मचारी लगे, 1600 करोड़ रुपये का सरकारी खर्च आया। इसके अलावा लोगों ने अपनी नागरिकता साबित करने की प्रक्रिया में यात्रा खर्च, कागजात बनवाना, रिश्वत देना, मजदूरी छोड़ना आदि में 7800 करोड़ रुपये खर्च किये हैं। यानी कुल खर्च हुआ-- 9400 करोड़ रुपया या प्रति व्यक्ति 2850 रुपया। इसके अनुसार पूरे देश में एनआरसी लागू की जाये तो 3,84,750 करोड़ रुपये खर्च होंगे। इसके साथ ही जो लोग अपनी नागरिकता प्रमाणित कर नहीं पाएँगे, उन करोड़ों लोगों के लिए जो डिटेंशन सेण्टर बनाने होंगे, उसका खर्च भी शामिल कर लें, तो यह सब सरकारी खजाने पर भारी बोझ होगा। वित्त वर्ष 2020-21 के बजट के अनुसार सरकार साल भर में शिक्षा पर 99,312 करोड़ रुपये और स्वास्थ्य पर

67,484 करोड़ रुपये खर्च करेगी। इसमें विज्ञान विभाग और ग्रामीण विकास भी जोड़ लें तो सब मिलाकर भी यह एनआरसी के खर्च से लगभग 43,000 करोड़ कम है। इसी बजट में सरकार ने खाद, खाद्यान्न और पेट्रोलियम पर कम सब्सिडी दी है। एनआरसी पर होने वाले कुल अनुमानित खर्च से देश भर में 692 विश्वविद्यालय खोले जा सकते हैं।

सरकार नौजवानों को रोजगार देने और नयी भर्तियाँ निकालने के नाम पर आर्थिक तंगी का रोना रोती है। सरकार के पास कुपोषण और भुखमरी की शिकार अपनी बहुसंख्यक आबादी को पौष्टिक और भरपेट खाना मुहैया कराने के लिए पैसे नहीं हैं। इसके बावजूद सरकार इस देश की जनता को साम्प्रदायिक आधार पर विभाजित करके अपना वोट-बैंक बढ़ाने की रणनीति के तहत सीएए और एनआरसी लगाने पर अड़ी है और अहंकारपूर्वक कह रही है कि वह एक कदम पीछे नहीं हटेगी। सवाल यह भी है कि सरकार इतनी महँगी प्रक्रिया को पूरा करने के लिए धन कहाँ से लाएगी? क्या वह गरीबों की थाली से रोटी का बचा-खुचा टुकड़ा भी छीन लेगी? देशव्यापी विरोध और जनान्दोलन को नजरअन्दाज करके सरकार सीएए और एनआरसी को लेकर इतनी महँगी कवायद क्यों कर रही है?

सरकार कई बार दुहरा चुकी है कि वह देश की अर्थव्यवस्था को 5 ट्रिलियन डॉलर तक पहुँचाना चाहती है। यह एक शिगूफा है। सच्चाई यह है कि भारत की अर्थव्यवस्था भयानक मन्दी की शिकार है। विनिर्माण, वित्त और सेवा क्षेत्रों में गिरावट जारी है। नयी नौकरी निकालने के बजाय, सरकारी दफ्तरों को बन्द किया जा रहा है। निजी क्षेत्र में भी रोजगार पैदा नहीं हो रहा है। उलटे लोगों की छँटनी हो रही है। जब लोग अपने जिन्दा रहने को लेकर हैरान-परेशान रहेंगे तो जाहिर सी बात है कि रोजगार, स्वास्थ्य, शिक्षा को लेकर सरकार से सवाल पूछेंगे ही। ऐसे में कोई भी सरकार जो अपनी जनता की मूलभूत जरूरतों को पूरा नहीं कर सकती, लोगों को भरमाने के लिए नयी-नयी तरकीबें निकालती है। सीएए और एनआरसी इसी की उपज है। जनता हिन्दू-मुसलमान की बहस में उलझी रहे, साम्प्रदायिक विभाजन और नफरत के बीच चुनाव जीतती रहे और सरकार के कामकाज पर कोई सवाल न उठे, इस मंशा में सरकार कामयाब होती नजर आ रही है। सरकार की असली मंशा का पर्दाफाश करना और उसे जनता के बीच लेकर जाना, आज हर जागरूक नागरिक का कर्तव्य बन गया है।

शाहीन बाग आन्दोलन की चमक

सिर्फ बुर्का तलाशने वालों और बुर्के में फकत एक दबा-सिकुड़ा जिस्म, एक 'मादा' तलाशने वालों के लिए यह अजब-गजब है कि बिना किसी मस्जिद से खुत्बा, फतवा, फरमान जारी हुए, बिना किसी मठाधीश के मंत्र फूँके, बिना किसी राजनीतिक दल द्वारा गोलबन्द किये, हाड़ कम्पा देने वाली ठंड में आकाश तले, ये इतने सारे लोग हाथों में तिरंगा, संविधान बचाओ की तख्ती और अम्बेडकर का चित्र लिये चौबीस घंटों के सत्यग्रही के रूप में शहर दर शहर कैसे जमा हो रहे हैं। धमकाने, बदनाम करने, अनसुना करने, रजाई कम्बल ओढ़ना छीन लेने, शौचालय में ताला लगा देने, कारोबार चौपट हो जाने के बावजूद बिना किसी हिंसा के यह कारवाँ लगातार चलता-बढ़ता जा रहा है।...

... पूर्वोत्तर राज्य, जामिया इस्लामिया, अलीगढ़, जेएनयू, शाहीन बाग और फिर पूरे मुल्क में महसूस होने लगा कि फकीर पल्थीमार है और देश की नागरिकता पर साझा खतरा मंडरा रहा है। नागरिकता को हिन्दू-मुस्लिम में बाँटने की फितरत बेनकाब होती गयी।... संविधान की कसम खाकर गद्दी-नशीन हुए लोगों ने लफंगों की भाषा में बर्ताव शुरू कर दिया। अब किसी को दोहराने-दिखाने की भी जरूरत नहीं रही कि देश में अघोषित तानाशाही आ चुकी है।

यह आन्दोलन साबित कर रहा है कि जब-जब सत्ता बेलगाम होती है उस पर लगाम कसने का काम जनता ही करती है। लगातार झूठ और वादा-खिलाफी, मत-भेद को मन-भेद तक ले जाने की मंशा ही इनका विकासवाद है। पार्टी का विकास ही सबका विकास है। पार्टी कार्यकर्ता का विश्वास ही सबका विश्वास है। बहुत प्यारा रंग था भगवा। तिरंगे पर चढ़ने को तैयार। मगर एक ही लोकसभा टर्म के बाद भगई में बदल गया।...

-- देवेन्द्र आर्य

असम में एनआरसी का प्रबल विरोध

-- अनुराग मौर्य

असम में राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर (एनआरसी) का सर्मथन करनेवाले दो पत्रकार भाइयों ने लिखा कि हमें खुद नहीं पता था कि हम क्या करने जा रहे हैं। हमने शुरू में इसकी कठिनाइयों का अनुमान नहीं लगाया था और बिना यह जाने राज्य के सवा तीन करोड़ लोगों को उनकी जिन्दगी की सामान्य दिनचर्या, कारोबार और नौकरी से हटाकर नागरिकता की लम्बी लाइन में धक्के खाने के लिए लगा दिया। इसका अहसास हमें बाद में हुआ। वे कहते हैं कि हम नहीं चाहते कि एनआरसी देश के किसी भी हिस्से में लागू किया जाये। क्या वाकई एनआरसी और सीएए इतना पीड़ादायी है?

असम देश का पहला राज्य है जहाँ एनआरसी लागू की जा चुकी है। राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (एनआरसी) की सूची में नाम नहीं होने का मतलब यह है कि आप भारत के नागरिक नहीं हैं। 1951 के बाद वहाँ 2011 से इसका नवीनीकरण शुरू किया गया जिसका मुख्य उद्देश्य राज्य में रह रहे अवैध नागरिकों की पहचान करना था। असम में हुई एनआरसी की प्रक्रिया में कुल 1600 करोड़ रुपये का सरकारी खर्च आया है। इस खर्च में एनआरसी में लगे 52,000 कर्मचारियों का वेतन-भत्ता शामिल नहीं है। इस हिसाब से पूरे देश में इसे करने में लगभग 3 लाख करोड़ रुपये से ज्यादा का खर्च आयेगा। कुछ संस्थाओं की रिपोर्ट के मुताबिक इसमें असम की जनता का 8000 करोड़ रुपया लगा। यह राशि प्रति व्यक्ति 2 से 2.5 हजार रुपये तक बैठती है। मजदूरों और निचले तबके के लिए यह प्रक्रिया कतई आसान नहीं रही, उन्हें कई दिन दफ्तरों के चक्कर काटने पड़े, कितने ही अधिकारियों की जेबें गर्म करनी पड़ीं और सिफारिशें अलग से।

असम की पृष्ठभूमि, चाहे वह भाषा हो, संस्कृति और विरासत हो, शुरू से ही अलग रही है। असम 1950 में भारत का हिस्सा बना था। यहाँ बहुत पहले से ही बिहार, बंगाल और आस-पास के प्रदेशों से लोग काम की तलाश में आते रहे हैं, जिसे यहाँ के लोगों ने कभी स्वीकार नहीं किया। आसामी अपनी संस्कृति में किसी का दखल नहीं चाहते थे। नागरिकता संशोधन कानून बनने के बाद इस इलाके में व्यापक पैमाने पर विरोध प्रदर्शन के पीछे भी यही कारण काम कर रहा है।

सत्तर के दशक में बांग्लादेश के स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान जब पूर्वोत्तर राज्यों में जनसंख्या समीकरण लगातार बदलने लगा तो 1978 में ऑल असम स्टूडेण्ट यूनियन (आसू) और ऑल असम गण परिषद (एजीपी) संगठनों ने असम में एनआरसी लागू करवाने के लिए जबरदस्त आन्दोलन खड़ा किया था। 1979 से 1985 तक चले इस आन्दोलन ने कई मोड़ लिये, जो आज इतिहास का विषय बन गया है। आन्दोलनों के दबाव में केन्द्र की तत्कालीन कांग्रेस सरकार और आन्दोलन के नेताओं ने मिलकर एक दस्तावेज तैयार किया। इसे ही "असम समझौता" के नाम से जाना जाता है। इस समझौते के तीन मुख्य बिन्दु थे। पहला, 1951 से 1961 के बीच आये नागरिकों को पूर्ण नागरिकता और वोट देने का अधिकार दिया जायेगा। दूसरा, 1961 से 71 के बीच आये नागरिकों को नागरिकता का अधिकार तो होगा लेकिन वोट का अधिकार नहीं दिया जायेगा। तीसरा, 1971 के बाद राज्य में आये लोगों को अवैध नागरिक माना जायेगा और उन्हें वापस भेजा जायेगा। हालाँकि बाद में यह "असम समझौता" ठण्डे बस्ते में चला गया।

असम में यह मुद्दा 2012 में राजनीतिक पार्टियों द्वारा फिर से गरमाया गया। साम्प्रदायिक नफरत को हवा दी गयी। दंगे का माहौल बनाया गया। इसी दौरान कोकराझार में बंगाली मुस्लिम और बोड़ो आदिवासी समुदाय के बीच साम्प्रदायिक हिंसा में 77 लोग मारे गये। इलाके में कर्फ्यू भी लगा। मामला सुप्रीम कोर्ट में चला गया। लेकिन चुनावी पार्टियों ने इसका दोष अवैध प्रवासियों पर मढ़कर नागरिकता को मुद्दा बना दिया। लोकसभा चुनाव से पहले असम में एक जनसभा को सम्बोधित करते हुए प्रधानमंत्री मोदी ने कहा कि 16 मई के परिणाम के बाद अवैध प्रवासियों को अपना बोरिया-बिस्तर बाँध लेना चाहिए।

असम में एनआरसी से क्या मिला? बीजेपी सरकार का दावा था कि असम में एक करोड़ घुसपैठिये हैं। एक करोड़ घुसपैठियों का जुमला फेंककर सरकार ने असम सहित पूरे देश में एनआरसी को जायज ठहराया था। जनता की गाढ़ी कमाई को एनआरसी में खपाकर आखिर क्या हासिल हुआ? हम देख सकते हैं कि फाइनल ड्राफ्ट के बाद सिर्फ 19 लाख लोगों का नाम आया, जो अपनी नागरिकता साबित नहीं कर पाये। इनमें लगभग दो तिहाई हिन्दू हैं। यह आँकड़ा खुद सरकार के लिए परेशानी का सबब बन गया। हिन्दुओं का मसीहा बनने वाली मोदी सरकार कैसे लाखों हिन्दुओं को डिटेंशन कैम्प में डाल सकती है? यह सवाल महत्त्वपूर्ण हो गया। सीएए

कानून लाने के पीछे कहीं न कहीं असम एनआरसी की भी भूमिका है, ताकि किसी तरह हिन्दुओं को यकीन दिलाया जा सके कि उन्हें देश की नागरिकता से वंचित नहीं किया जायेगा।

इसके अलावा असम एनआरसी में दूसरी ढेरों कमियाँ हैं। इसमें कई परिवार ऐसे हैं जिनके पिता का नाम और बच्चों का नाम तो सूची में है। लेकिन माँ का नाम नहीं है, तो किसी में दादी का नाम नहीं तो कहीं परिवार के मुखिया का नाम ही नहीं है। चाय के बगान में कई पीढ़ियाँ गुजार देने वालों के नाम इस सूची में नहीं हैं लेकिन उनका घर-बार और खेत-खलिहान सब असम में ही है। अब वे कहाँ जायेंगे?

नागरिकता को साम्प्रदायिक रंग देने से मामला और बिगड़ गया। असम एनआरसी के बाद नागरिकता के मानदण्डों को बदलकर उसे साम्प्रदायिक रंग दे दिया गया। नागरिकता संशोधन अधिनियम 2019 में किये गये बदलाव के मुताबिक अफगानिस्तान, पकिस्तान और बांग्लादेश के हिन्दू, सिख, बुद्ध, जैन, पारसी, ईसाई धर्म के लोगों को तो नागरिकता दी जायेगी लेकिन इस सूची से मुस्लिम समुदाय को अलग कर दिया गया। अगर सवाल वैध या अवैध का है तो उन सभी धर्म के शरणार्थियों के लिए एक समान होना चाहिए जो हमारे देश के नहीं हैं।

नागरिकता संशोधन अधिनियम-2019 जो अब कानून बन गया है, उसके खिलाफ पूरे देश में आन्दोलन और विरोध प्रदर्शन हो रहा है। लेकिन पूर्वोत्तर राज्य के विरोध का मुख्य मुद्दा देश के अन्य हिस्सों से अलग है। वहाँ लोग विरोध इसलिए कर रहे हैं कि किसी भी गैर-असमियाँ या गैर-पूर्वोत्तर राज्य के नागरिक को नागरिकता नहीं दी जानी चाहिए चाहे वह किसी भी धर्म या समुदाय का क्यों न हो। पूर्वोत्तर राज्य अपनी भाषा-संस्कृति में किसी भी दूसरे समुदाय का दखल नहीं चाहते हैं।

नागरिकता संशोधन कानून (सीएए) के तहत साल 2014 को सीमा रेखा माना गया है जिसके पहले आये सभी विदेशी हिन्दुओं को नागरिकता दे दी जायेगी। लेकिन असम का मतभेद यहीं से जन्म लेता है। "असम समझौता" के अनुसार सीमा रेखा 1971 तय थी, जिसके अनुसार 71 के बाद आये सभी नागरिकों को अवैध घोषित किया जाना था। नागरिकता के लिए की गयी असम एनआरसी की सारी कवायद बेकार चली गयी है। 2011 से असम की जनता लाइनों में लगकर, दफ्तरों का चक्कर लगाकर, सिफारिश करके, रिश्वत देकर, नौकरी छोड़कर और तमाम दुःख-तकलीफों को झेलते हुए जिस नागरिकता को प्रमाणित कर रही थी, सीएए लागू होने के बाद वह सब बेकार हो गया। पूर्वोत्तर के राज्यों की जनता ठगी सी रह गयी। यही वजह है कि असम, मेघालय और त्रिपुरा में आन्दोलन ने बहुत तीखा रूप ले लिया है और शान्त होने का नाम नहीं ले रहा है। असम में पाँच लोगों की मौत हुई, जबकि कुल 144 लोग घायल हुए। इनमें से चार लोगों की मौत पुलिस की गोली से हुई और एक व्यक्ति की अन्य घटना में हुई। सरकार ने विरोध को दबाने के लिए असम और त्रिपुरा के कुछ कस्बों में अनिश्चितकालीन कर्फ्यू लगा दिया और इण्टरनेट सेवाएँ भी बन्द कर दी। ऐसा सिर्फ असम में ही नहीं हो रहा है, यह पूरे भारत में चल रहा है। लेकिन गृहमंत्री कहते हैं कि हम एक इंच भी पीछे नहीं हटेंगे।

सरकार सीएए, एनआरसी और डिटेंशन सेण्टर को लेकर कई भ्रामक खबरें फैलाती रही है। बीबीसी ने असम के डिटेंशन सेण्टर पर कई वीडियो बनाकर खुलासे किये हैं। ये वीडियो आज भी बीबीसी की वेबसाइट पर उपलब्ध हैं। दरअसल जो लोग अपनी नागरिकता साबित नहीं कर सकते, उन्हें बन्दी बनाकर रखने के लिए ही डिटेंशन सेण्टर बनाये गये हैं। असम का डिटेंशन सेण्टर भयावह है, यह हिटलर के नाजी कन्सेंट्रेशन कैम्प की याद दिलाता है, जहाँ यहूदियों के खिलाफ निर्मम व्यवहार किया जाता था। अब तक असम के डिटेंशन सेण्टरों में लगभग 1000 लोगों को डाला जा चुका हैं, जिसमें से 29 लोगों की मौत हो चुकी है। यह घिनौना और अपमानजनक है।

प्रधानमंत्री मोदी की ऐसी क्या मजबूरियाँ हैं कि उन्हें डिटेंशन सेण्टर के बारे में झूठ बोलना पड़ा? देश में डिटेंशन सेण्टर होने से इनकार करके जनता को क्या सन्देश देना चाहते हैं। कहीं वे देश की जनता को गुमराह तो नहीं कर रहे हैं। दरअसल सभी जानते हैं कि हिटलर के समय डिटेंशन सेण्टर फासीवादियों और बर्बरों का हथियार था और यह इनसानियत को शर्मसार करने वाला है। आज दुनिया जहाँ पहुँच गयी है, ऐसे समय दुनिया की कोई भी सरकार डिटेंशन सेण्टर चलाये, इससे गन्दी और भयावह चीज नहीं मानी जा सकती। लोग डिटेंशन सेण्टर का नाम सुनते ही इसकी तुलना हिटलर के शासन से करने लगते हैं, अपने को इस दाग से बचाने के लिए झूठ बोलना लाजिमी है ताकि देश की जनता को धोखा दिया जा सके और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी छवि साफ की जा सके। सच्चाई यह है कि 2018 में ही मोदी सरकार ने गोलपाड़ा जिले में लगभग 3000 लोगों की क्षमता वाले डिटेंशन कैम्प के लिए 46 करोड़ रुपये का फण्ड मंजूर किया था।

देश में एनआरसी और सीएए विवाद शुरू होने से पहले भी सरकार की आर्थिक और सामाजिक नीतियों के खिलाफ विरोध के स्वर उठ रहे थे। सरकार के समर्थक भी इन मुद्दों पर सरकार की आलोचना करने लगे थे। किसान, मजदूर बेरोजगार नौजवान और छात्र अलग-अलग जगहों पर सरकार की नीतियों के खिलाफ खड़े हो रहे थे। लेकिन सरकार ने संविधान विरोधी साम्प्रदायिक विभाजनकारी एनआरसी और सीएए लाकर लोगों के मन में क्षोभ और आक्रोश को भड़का दिया है। असम में एनआरसी की प्रक्रिया पूरी हो चुकी है और पूरे देश में एनआरसी और सीसीए लागू करने की तैयारी जोरों पर है। असम सहित देश भर में जारी जन-आक्रोश और व्याापक जन आन्दोलनों का यही कारण है।

देश असमाधेय और ढाँचागत आर्थिक संकट के भँवर में

-- विक्रम प्रताप

राजा मिदास ने भगवान से वरदान माँगा कि वह जिस चीज को छू ले, वह सोना बन जाये। उसे वरदान मिला, चारों ओर से सोने की बरसात होने लगी। कुछ दिन बाद मिदास अपने महल में मरा हुआ पाया गया जबकि उसके आस-पास की सभी चीजें सोने की थीं, थाली में सजा खाना भी। यूनान का यह मिथक देश के मौजूदा आर्थिक संकट और सरकार में उसकी भूमिका को बखूबी बयान करता है। पिछले कई सालों से हम सुनते आ रहे हैं कि सरकार विदेशी निवेशकों को भारत में बुलाने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगा रही है। विदेश से पूँजी की बरसात हो रही है। कर-प्रणाली में व्यापक सुधार करके जीएसटी लायी गयी, जिससे हर महीने एक लाख करोड़ से अधिक की कमाई होने की उम्मीद जतायी गयी और कई महीने रिकॉर्ड जीएसटी संग्रह भी हुआ। देश की बेहतरीन सार्वजनिक कम्पनियों, जमीन और बहुमूल्य आर्थिक संसाधनों को नीलाम करके धन जुटाया गया। फिर भी आर्थिक संकट को रोक पाना सम्भव न हुआ। नतीजा, आज देश की अर्थव्यवस्था मन्दी के भँवर में गोते खा रही है। अर्थ जगत के लिए कुल मिलाकर साल 2020 की शुरुआत निराशाजनक है।

नये साल की शुरुआत में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) ने भारत की आर्थिक वृद्धि दर के अनुमान को घटाककर 4.8 प्रतिशत कर दिया है। पिछले साल अक्टूबर में उसने इसे घटाकर 6.1 प्रतिशत का अनुमान लगाया था। इसे और घटाने के पीछे कारण बताया गया कि स्थानीय माँग में तेजी से कमी हो रही है और गैर-बैंकिंग वित्तीय क्षेत्र में तनाव बढ़ने की आशंका है। आईएमएफ ने बताया कि "2019 की तीसरी तिमाही में, उभरती हुई बाजार अर्थव्यवस्थाओं (भारत, मैक्सिको और दक्षिण अफ्रीका) में वृद्धि उम्मीद से कम थी, जिसका मुख्य कारण अक्टूबर में घरेलू माँग पर देश-विशेष के झटके थे।" इससे साफ हो जाता है कि इन देशों में जनता की क्रयशक्ति गिरती जा रही है, जिससे घरेलू माँग में भारी कमी आ रही है। अमरीका-चीन के बीच व्यापार युद्ध में नरमी आने के चलते विश्व अर्थव्यवस्था में सुधार आने की उम्मीद जतायी जा रही थी, लेकिन अमरीका-ईरान के बिगड़ते सम्बन्ध के चलते तेल-आपूर्ति में बाधा पड़ सकती है और निवेश में कमी आने की सम्भावना है। इससे विश्व अर्थव्यवस्था को उभरने में मदद नहीं मिलेगी।

26 जनवरी को नोबेल पुरस्कार से सम्मानित अर्थशास्त्री अभिजीत बनर्जी ने कहा कि "देश का बैंकिंग क्षेत्र दबाव का सामना कर रहा है और सरकार की ऐसी हालत नहीं है कि वह प्रोत्साहन पैकेज देकर इसे संकट से बाहर निकाल सके।" उन्होंने बैंकों की स्थिति पर चिन्ता जतायी तथा साथ ही कार और दोपहिया वाहनों की बिक्री में कमी का कारण माँग में कमी होना बताया। इससे अर्थव्यवस्था में लोगों का भरोसा खत्म हो रहा है। इसीलिए वे खर्च करने से कतरा रहे हैं। विदेशी निवेशक भी अर्थव्यवस्था की ऐसी हालत से खुश नहीं हैं।

आरबीआई के पूर्व गवर्नर रघुराम राजन ने सीएनबीसी इण्टरनेशनल को दिये एक इण्टरव्यू में बताया कि "विकास की मौजूदा दर युवा श्रम शक्ति के लिए नौकरियाँ सृजित करने के मामले में पर्याप्त नहीं है..." सरकार पर आर्थिक सुधारों को और तेजी से लागू करने के लिए दबाव बनाते हुए उन्होंने आगे कहा, "... और धीमी अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने के लिए तेज सुधारों की जरूरत है। पिछले 15 वर्षों में समस्या यह है कि सुधार की गति काफी धीमी हो गयी है।" पिछले साल नीति आयोग के उपाध्यक्ष राजीव कुमार को भी स्वीकार करना पड़ा कि "पिछले 70 सालों में किसी सरकार को ऐसी हालत का सामना नहीं करना पड़ा था, जहाँ पूरी वित्तीय प्रणाली ही खतरे में हो।" लेकिन इससे पहले सरकार अर्थव्यवस्था में 'ढाँचागत मन्दी' की बात करने वालों को 'पेशेवर निराशावादी' कहकर मजाक उड़ाती थी। **आँकड़ों में हेराफेरी करने और झूठ को सच बनाकर परोसने का काम भी किया गया। खुद सरकार के भूतपूर्व आर्थिक सलाहकार अरविन्द सुब्रमण्यन ने बताया कि जिस समय अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर 7.1 प्रतिशत होने की बात की गयी, उस समय वास्तव में वृद्धि दर उससे 2.5 प्रतिशत कम थी।** वित्त मंत्री ने राज्यसभा में कहा कि अर्थव्यवस्था में थोड़ी सुस्ती है, लेकिन इसे मन्दी नहीं कहेंगे और न कभी मन्दी होगी। इस पर सदन में काफी हल्ला मचा। विपक्ष ने मन्दी की इस स्थिति को 'एलार्मिंग सिचुएशन' बताया। अरविन्द सुब्रमण्यन ने कहा कि देश की अर्थव्यवस्था आईसीयू की तरफ बढ़ रही है।

पिछले साल अगस्त में भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) ने अपनी वार्षिक रिपोर्ट में बताया था कि भारत की अर्थव्यवस्था

चक्रीय मन्दी के दौर से गुजर रही है। लेकिन आरबीआई ने ढाँचागत मन्दी होने से इनकार किया। चक्रीय मन्दी से यहाँ मतलब यह है कि किसी भी व्यवसाय में कुछ समयान्तराल पर व्यापार में तेजी और मन्दी का चक्र चलता रहता है, जो व्यापार चक्र का हिस्सा होता है। चक्रीय मन्दी को दूर करने के लिए अन्तरिम वित्तीय और मौद्रिक उपायों, क्रेडिट बाजारों के अस्थायी पुनर्पूंजीकरण और अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करने के लिए माँग-आधारित नियामक परिवर्तनों की आवश्यकता होती है। जैसे-- आरबीआई समय-समय पर रेपो रेट, सीआरआर आदि नियामकों के जरिये बाजार में मुद्रा की आपूर्ति को नियंत्रित करती है। इससे महँगाई, उपभोग और मुद्रा प्रचलन (तरलता) में कमी या वृद्धि होती है और बाजार में सामानों की माँग बढ़ या घट जाती है। लेकिन मौद्रिक उपायों के जरिये मन्दी को एक सीमा तक ही दूर किया जा सकता है। यदि मन्दी ने पूरे ढाँचे को अपनी चपेट में ले लिया है, अर्थव्यवस्था के कई क्षेत्र या लगभग सभी क्षेत्रों में गिरावट जारी हो और मन्दी लम्बे समय तक खिंच जाये तो वह ढाँचागत संकट बन जाती है और उसका उद्धार मौद्रिक नीतियों के जरिये करना सम्भव नहीं होता।

मौजूदा आर्थिक संकट कोई चक्रीय संकट नहीं है, बल्कि यह ढाँचागत संकट बन चुका है। लेकिन सरकार के अर्थशास्त्री इसे चक्रीय संकट बताते हैं, जो तथ्यों से मेल नहीं खाता। इसे साबित करने के लिए हमें यह दिखाना होगा कि मौजूदा मन्दी अर्थव्यवस्था के लगभग सभी क्षेत्रों में फैल चुकी है, इसका समयान्तराल काफी लम्बा है और यह मौद्रिक उपायों से काबू में नहीं आ रही है। आज अर्थव्यवस्था का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है, जो संकट की गिरफ्त में न हो। अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र में मन्दी के एक से बढ़कर एक आँकड़ें समाचार पत्र-पत्रिकाओं में रोज ही आ रहे हैं। उनमें से कुछ चुनिन्दा क्षेत्रों के आँकड़ें यहाँ दिये जा रहे हैं। पाठक खुद ही अन्दाजा लगा सकते हैं कि स्थिति कितनी भयावह है--

टेलिकॉम क्षेत्र घाटे में

पिछले वित्त वर्ष की दूसरी तिमाही में भारती एयरटेल, रिलायंस कम्युनिकेशन और वोडाफोन-आईडिया को क्रमशः 23 हजार करोड़, 30 हजार करोड़ और 51 हजार करोड़ रुपये का घाटा हुआ। वित्तमंत्री ने इस घाटे को देखते हुए स्वीकार किया कि वे इससे अवगत हैं। वे नहीं चाहतीं कि कोई कम्पनी बन्द हो। उनका बिजनेस तेजी से फले-फूले। लेकिन लगता है कि वितमंत्री की नेक नीयती टेलिकॉम सेक्टर के लिए किसी काम की नहीं है। इन कम्पनियों के संकट का यहीं अन्त नहीं हुआ।

पिछले साल अक्टूबर में एडजस्टेड ग्रॉस रेवेन्यु (एजीआर) पर सुप्रीम कोर्ट का फैसला आया था, जिसमें सरकार द्वारा तय की गयी एजीआर की परिभाषा को सही मान लिया गया था, जिसके अनुसार एजीआर किसी भी लाइसेंसधारी की कुल आय है। इसमें गैर-कोर टेलिकॉम से मिलनेवाली आय भी शामिल है। यानी किराया, लाभांश और ब्याज से होनेवाली आय को भी इसमें जोड़ा दिया गया है। एजीआर पर कोर्ट का फैसला आने के बाद यह तय हो गया कि टेलिकॉम कम्पनियों को सरकारी खजाने में अपने बकाये के 1.47 लाख करोड़ रुपये जमा करने हैं। यह इन कम्पनियों को लगने वाला एक और झटका है। कोर्ट ने इन कम्पनियों को अपना बकाया जमा करने के लिए 24 जनवरी 2020 तक समय दिया। इसके बाद टेलिकॉम विभाग वसूली के लिए इन कम्पनियों को नोटिस भेजना शुरू कर देगा। वसूली के मामले में इस बार सरकार पूरी तरह मुस्तैद है और कम्पनियों को किसी भी तरह की राहत देने की स्थिति में नहीं है क्योंकि सरकार खुद आर्थिक तंगी का सामना कर रही है।

इस तरह हम देखते हैं कि सरकार और टेलिकॉम कम्पनियाँ आमने-सामने खड़ी हैं। यानी पूँजी का दीर्घकालिक हित, जिसे कोई भी पूँजीवादी सरकार सबसे अच्छे तरीके से साधती है, वह पूँजी के तात्कालिक हित से टकरा रहा है, जिसका प्रतिनिधित्व निजी कम्पनियाँ करती हैं। यह संकट की एक और अभिव्यक्ति है। **जब कोई भी व्यवस्था अपनी जड़ों तक संकटग्रस्त होती है, तो उसका एक हिस्सा अपने दूसरे हिस्से के खिलाफ हो जाता है। इस मामले में निजी पूँजी के हित में समर्पित पूँजीवादी सरकार की हालत एक तरफ कुआँ तो दूसरी तरफ खाई जैसी हो गयी है।** वह चाहकर भी इन कम्पनियों की देनदारी एक सीमा से आगे जाकर माफ नहीं कर सकती और अगर उसने अपने संकीर्ण वर्गीय सोच के चलते ऐसा किया तो वह अपने ही वर्ग के दूरगामी हित और पूँजीवादी व्यवस्था के रास्ते का रोड़ा बन जायेगी।

टेलिकॉम कम्पनियों के घाटे में यदि उनकी सरकारी देनदारी को जोड़कर देखें, तो स्पष्ट हो जाता है कि ये कम्पनियाँ संकट में बुरी तरह फँस गयी हैं। कोर्ट के फैसले के हिसाब से वोडाफोन-आईडिया को लगभग 45 हजार करोड़ रुपये और भारतीय एयरटेल को लगभग 35 हजार करोड़ रुपये चुकाने हैं। इन खबरों के चलते मध्य जनवरी में वोडाफोन के शेयर 40 प्रतिशत तक लुढ़क गये। जिन बैंकों ने इन कम्पनियों को कर्ज दिया है, उनकी चिन्ताएँ बढ़ गयी हैं। उनके आगे भी तबाही का मंजर साफ दिख रहा है। ऐसा माना जा रहा है कि इस संकट के चलते 5-जी स्पेक्ट्रम को बाजार में उतारने में देरी होगी, इस क्षेत्र से होने वाली सरकारी आय में गिरावट आयेगी और इससे अर्थव्यवस्था की हालत और खराब हो जायेगी।

भवन और वाहन की बिक्री में गिरावट

आरबीआई के भूतपूर्व गवर्नर रघुराम राजन ने कहा कि अचल सम्पत्ति, निर्माण और बुनियादी ढाँचा उद्योग 'बेहद परेशानी में' हैं। यह बात प्राग टाइगर की रिपोर्ट से भी साबित होती है,

जिसके अनुसार मौजूदा वित्त वर्ष की तीसरी तिमाही में 9 बड़े शहरों की भवन बिक्री में 30 प्रतिशत की गिरावट आयी है। पिछले साल की तुलना में रिहाइशी सम्पत्ति की कुल बिक्री में 13 प्रतिशत की कमी हुई है। इस तरह हम देखते हैं कि रियल एस्टेट में संकट के चलते लगभग 66 अरब डॉलर की आवासीय परियोजनाएँ दिवालिया होने की हालत में हैं। सितम्बर 2019 तक रियल एस्टेट के कुल 115 दिवालिया मामले दर्ज किये जा चुके हैं। इसमें बड़ी संख्या में कर्ज नहीं लौटाने वाले मामले भी हैं। ये सभी नकदी की कमी से जूझ रहे हैं। बैंक इन्हें और अधिक कर्ज देने से हाथ पीछे खींच रहे हैं क्योंकि बैंको द्वारा पहले दिये गये कर्ज की वसूली नहीं हो पायी है और उनमें से बड़ी संख्या में कर्ज एनपीए की स्थिति में आ गये हैं। इसके चलते बैंकों का दिवाला पिट गया है।

बीते साल के अन्तिम महीने में ऑटोमोबाइल निर्माता कम्पनियों के संगठन 'सियाम' ने वाहनों की बिक्री के आँकड़े जारी किये। इन आँकड़ों के अनुसार दिसम्बर में कुल 14.05 लाख वाहनों की बिक्री हुई जो इसी महीने के पिछले साल की बिक्री से 2.12 लाख वाहन कम है। इसी तरह पिछले साल की तुलना में 2019 में कुल वाहनों की बिक्री में 13.77 प्रतिशत की गिरावट दर्ज की गयी।

सरकार की कुल आय में गिरावट

2019-20 के वित्तीय वर्ष के लिए सरकार ने कमाई का कुल लक्ष्य 19.6 लाख करोड़ रुपये रखा है। ऐसा लग रहा है कि सरकार यह लक्ष्य भी हासिल नहीं कर पाएगी। पिछले साल सरकार ने कॉर्पोरेट के टैक्स को 30 प्रतिशत से घटाकर 25 प्रतिशत कर दिया था, जो वास्तव में तमाम छूट के बाद लगभग 22 प्रतिशत तक आ गया है। इससे हर साल सरकार को लगभग 1.5 लाख करोड़ रुपये के राजस्व का नुकसान होगा। **जीएसटी संग्रह भी धीरे-धीरे गिरता जा रहा है। पिछले साल की आखिरी तिमाही में केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच तनाव बढ़ गया, जिसकी वजह थी, केन्द्र ने राज्यों को जीएसटी का तय हिस्सा समय सीमा के अन्दर नहीं दिया। ये सभी बातें अर्थव्यवस्था की सुस्त रफ्तार को ही दिखाती हैं।** आर्थिक विश्लेषक मानते हैं कि "2020 के बजट में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर में सरकार 3.48 लाख करोड़ रुपये की कमी का सामना कर सकती है।" इसके चलते सरकार वार्षिक बजट में 2.2 लाख करोड़ रुपये की कटौती कर सकती है।

2019 की तीसरी तिमाही में भारत में बाहरी ऋण बढ़कर 39,72,038 करोड़ रुपये हो गया, जो उसी साल की दूसरी तिमाही में 39,68,747 करोड़ रुपये था यानी एक तिमाही में 3,291 करोड़ रुपये की वृद्धि। पिछले साल सरकारी घाटे को पूरा करने के लिए आरबीआई ने सरकार को कुल 1,76,051 करोड़ रुपये की राशि उपलब्ध करायी थी, जिसमें वित्त वर्ष 2018-19 की बचत (सरप्लस) का 1,23,414 करोड़ रुपया भी शामिल है और 52,637 करोड़ रुपये अतिरिक्त दिया गया था, इसे ही लेकर पक्ष-विपक्ष में बहुत विवाद हुआ था। इसके बावजूद भी सरकार की आर्थिक कठिनाइयाँ कम नहीं हुईं। उम्मीद है कि इस साल फिर सरकार आरबीआई से 35-45 हजार करोड़ रुपये अतिरिक्त धनराशी की माँग करेगी।

विदेशी व्यापार घाटे का सौदा

भारत के लिए विदेशी व्यापार घाटे का सौदा बन गया है। इसे केवल एक उदाहरण से आसानी से समझा जा सकता है। आज भारत और चीन के बीच व्यापार का फायदा सबसे अधिक चीन उठा रहा है। वित्त वर्ष 2019 में इस व्यापार में भारत को कुल 3,776 अरब रुपये का घाटा उठाना पडा। भारत, चीन को 1,211 अरब रुपये का माल बेचता है, जबकि वहाँ से 4,987 अरब रुपये का माल खरीदता है। विदेशी व्यापार पर निगाह रखना इसलिए भी जरूरी है कि जब विदेशी कम्पनियाँ भारत में निवेश करती हैं, तो उनकी उम्मीद रहती है कि वे जो भी मुनाफा कमाएँगी, वह डॉलर में लेकर जायेंगी। इसलिए भारत का विदेशी मुद्रा भण्डार पर्याप्त होना चाहिए। यह लगातार डॉलर की आपूर्ति करता रहे, इसके लिए व्यापार घाटा से बचना अनिवार्य है। इसके लिए उदारीकरण की नीति के तहत भारत को निर्यातोन्मुखी अर्थव्यवस्था बनाने का लक्ष्य रखा गया था। लेकिन आज हालात उलटे नजर आ रहे हैं। सवाल उठाता है कि भारत के नेता लगातार चीन को अपना दुश्मन बताते रहते हैं, वह डोकलाम में भी भारत को पीछे धकेलता जा रहा है, फिर भारत सरकार चीन से सम्बन्ध तोड़ क्यों नहीं लेती? उसके साथ व्यापार बन्द क्यों नहीं कर देती? अगर सरकार ईरान से अपने आर्थिक सम्बन्ध खत्म कर सकती है, जहाँ सीधे भारत को ही नुकसान है, तो चीन के साथ क्यों नहीं? दरअसल इस समस्या की कुंजी भारत की विश्व व्यवस्था में क्या हैसियत है, उससे तय होता है और भारत के अन्दर किस वर्ग का फायदा चीन से नुकसानदेह आर्थिक व्यापार में है, इससे गुत्थी सुलझ सकती है। जाहिर है कि यह वर्ग जो चीन-भारत व्यापार से फायदा उठा रहा है, वह सरकार के बेहद करीब है, इसीलिए सरकार इस घाटे को बर्दाश्त कर रही है।

डाँवाँडोल शेयर बाजार

पिछले साल जब 5 जुलाई को सरकार ने बजट पेश किया, तो शेयर धारकों में खलबली मच गयी। इससे अमीर और खुदरा निवेशकों को लगभग 1.33 लाख करोड़ रुपये का नुकसान हुआ, जबकि घरेलू संस्थागत निवेशकों को जुलाई महीने में 3.33 लाख करोड़ रुपये की चपत लगी। इसी दौरान विदेशी निवेशकों की बाजार पूँजी में 3.14 लाख करोड़ रुपये की कमी आयी। यानी कुल मिलाकर निवेशकों को एक महीने में 15 लाख करोड़ रुपये की चपत लगी। इस दौरान इण्डियाबुल्स हाउसिंग फाइनेंस के शेयरों में 36 प्रतिशत की कमी आयी। कोल इण्डिया, ओएनजीसी और वेदान्ता के शेयर कीमत 14 से 18 प्रतिशत कम हो गये हैं। टाटा

मोटर्स के शेयर 22.67, टाइटन के 19 और टाटा स्टील के 18 प्रतिशत तक गिर गये। **ये आँकड़ें दिखाते हैं कि निवेशकों का सरकार में और भारतीय अर्थव्यवस्था में विश्वास तेजी से कम हो रहा है। इसके साथ ही अब शेयर बाजार का गुब्बारा फूलकर इतना बड़ा हो गया है कि सरकार के किसी भी फैसले, देश-विदेश की राजनीतिक उथल-पुथल या मौसम के अचानक बदलाव से यह कभी भी पिचक सकता है।** पिछले साल सितम्बर में सऊदी अरब के तेल ठिकानों पर ड्रोन से हमला किया गया, इसके चलते तेल की कीमतों में भारी उछाल आया। इससे बीएसई का सेंसेक्स 642.22 अंक लुढ़क गया।

अन्य सभी क्षेत्र गिरावट के शिकार

कोर क्षेत्रों के अलावा रोजमर्रा इस्तेमाल होनेवाली चीजों का उत्पादन करनेवाली एफएमसीजी कम्पनियों का बाजार भी संकट में घिर गया है। जायज सी बात है कि जब लोगों के पास रोजगार नहीं होगा, उनकी क्रयशक्ति कमजोर होगी तो बाजार में उपभोक्ता सामानों की माँग कहाँ रह जायेगी? इसीलिए तेल, साबुन, नमकीन, बिस्किट, साइकिल, कपड़े के बाजार भी सुस्त पड़े हैं। **हालत यह हो गयी है कि फैशन डिजाइनिंग के टेलर, जो कपड़ों की नयी-नयी डिजाइनिंग बनाकर उपभोक्ताओं को खूब लुभाते थे और ब्राण्डेड कम्पनियों से भी महँगे दाम पर अपने कपड़े बेचकर अच्छा-खासा कारोबार कर रहे थे, वे कहते हैं कि थोक भाव के सस्ते-सस्ते रेडीमेड कपड़े बेचकर ही गुजारा करना पड़ रहा है। फैशन डिजाइनिंग से तैयार कपड़ों की अब माँग नहीं रही।**

गैर-पेट्रोलियम मालों के आयात और निर्यात में क्रमशः 6 प्रतिशत और एक प्रतिशत की गिरावट हुई है। पूँजीगत माल के उत्पादन की वृद्धि दर में 10 प्रतिशत की गिरावट आयी है। उपभोक्ता माल उत्पादन की वृद्धि दर जो 2017 में पाँच प्रतिशत पर थी, अब एक प्रतिशत पर है। तीसरी तिमाही में कंज्यूमर कॉन्फिडेंस 8 अंक टूटकर 89.4 रह गया। इससे साफ पता चलता है कि अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता का विश्वास टूट चुका है।

आसमान छूती महँगाई

महँगाई ने अपने पुराने सभी रिकॉर्ड तोड़ दिये। सभी को हतप्रभ करते हुए दिसम्बर में प्याज के दाम में 456 प्रतिशत का रिकॉर्ड उछाल आया। खाद्य पदार्थों की महँगाई ने आसमान छू लिया। दिसम्बर महीने में ही खुदरा महँगाई दर पाँच साल के उच्चतम स्तर 7.35 प्रतिशत पर पहुँच गयी। एसबीआई ने अपनी एक रिपोर्ट में चेतावनी दी है कि खुदरा महँगाई दर इससे भी ऊपर जा सकती है। महँगाई कम करने के सरकार के सारे दावे गलत साबित हो रहे हैं। खुद सरकार ही महँगाई बढ़ाने में पीछे नहीं है। पिछले 6 महीने में सब्सिडी वाले गैस-सिलेण्डर के दाम 62 रुपये यानी 13 प्रतिशत बढ़ा दिये गये।

क्या मौद्रिक नीति में बदलाव से संकट को टाला जा सकता है?

इसका जवाब नहीं में है। भारतीय रिजर्व बैंक मौद्रिक नीति तय करता है। मौद्रिक नीति में कैश रिजर्व रेशियो, रेपो रेट और रिवर्स रेपो रेट को कम या अधिक करके अर्थव्यवस्था में मुद्रा के प्रवाह को बढ़ाया या घटाया जाता है। जैसे-- आज पूरी अर्थव्यवस्था नकदी की कमी से जूझ रही है, लेकिन इसके साथ ही महँगाई अपने चरम पर है। यह स्थिति खतरनाक है क्योंकि अगर आरबीआई बाजार में बड़ी मात्रा में अतिरिक्त नकदी उतारती है तो इससे नकदी की कमी तो कुछ हद तक दूर होगी, लेकिन अधिक नकदी के चलते महँगाई और बढ़ जायेगी, जिससे लोगों की वास्तविक क्रयशक्ति घट जायेगी जो माँग को और कम कर देगी। नतीजा ढाक के तीन पात। यही वजह है कि पिछले साल आरबीआई ने लगातार चार बार रेपो रेट में कमी की, लेकिन उसका सकारात्मक असर बाजार पर नहीं दिखा। दूसरी ओर, भारत दुनिया की 10 बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में सबसे ऊपर आ गया है। भारत में डूबे हुए कर्ज का अनुपात 9.3 प्रतिशत है, यानी देश में करीब 11.46 लाख करोड़ रुपये कर्ज में फँसे हुए हैं, जिसकी वसूली लगभग असम्भव है। अधिकांश बैंकों का बैड लोन बढ़कर आत्मघाती हद तक पहुँच गया है। ये डूबते बैंक ब्याज दर कम करने के लिए तैयार नहीं हैं क्योंकि उन्हें पता है कि ब्याज दर घटाने से माँग बढ़े या न बढ़े, उनकी रही-सही कमाई जरूर मारी जायेगी। **ये सभी बैंक अभी हाँफते हुए साँस ले रहे हैं, जिस दिन ये दिवालिया होंगे, उस दिन अर्थव्यवस्था में आनेवाली सुनामी का अन्दाजा लगाइये, स्थिति भयावह होगी और भारतीय अर्थव्यवस्था का ढाँचा चरमरा जाएगा।**

बेरोजगारी का विकराल रूप

सरकार ने करोड़ों रोजगार पैदा करने का दावा किया था, लेकिन हुआ इसका ठीक उलटा। खुद सरकारी आँकड़ों के अनुसार बेरोजगारी 45 साल के उच्चतम स्तर पर है। सरकार का तरफदार मीडिया ग्रुप भास्कर ने कई क्षेत्रों के विशेषज्ञों, औद्योगिक अधिकारियों और सरकार की रिपोर्ट से नौकरियों की स्थिति के बारे में चौंकाने वाले आँकड़ें जुटाये हैं। उसने बताया कि पिछले पाँच सालों में सिर्फ 7 प्रमुख क्षेत्रों से 3.64 करोड़ लोगों का रोजगार छिन चुका है। इनमें प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों तरह के रोजगार शामिल हैं। केवल कपड़ा उद्योग के लगभग 3.5 करोड़ लोग बेरोजगार हुए हैं। **आज शिक्षित नौजवान एक छोटी सी नौकरी के लिए जगह-जगह धक्के खा रहे हैं। उनके सामने भविष्य एक अँधेरी गुफा है।** देश के शासक उनके अपमान और पीड़ा को कभी समझ नहीं सकते।

ऊपर आँकड़ों की मदद से हमने देखा कि आज भारत की अर्थव्यवस्था का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जो सेहतमन्द हो। अब इस मन्दी को आरबीआई की मौद्रिक नीतियों से काबू में नहीं किया जा

सकता। सरकार ने मन्दी से लड़ने के लिए कई कदम उठाये हैं, जैसे-- कॉर्पोरेट टैक्स में कटौती, आरबीआई से फण्ड लेना, मौद्रिक नीति में बदलाव, जीएसटी के जरिये जनता पर टैक्स बढ़ाना आदि, यानी कुल मिलाकर गरीबों से लूटकर अमीरों में बाँटने का काम किया है। ये सभी काम समाधान के बजाय खुद समस्या बन गये। **यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि इस मन्दी का समाधान सरकार के बूते से बाहर हो गया है। लम्बे समय तक पूरी अर्थव्यवस्था को तबाह करनेवाली यह मन्दी चक्रीय नहीं है, बल्कि ढाँचागत मन्दी है, जो असमाधेय हो गयी है।**

मन्दी का असर

मन्दी का असर अलग-अलग वर्गों और तबकों पर उनकी आर्थिक-राजनीतिक हैसियत के हिसाब से पड़ता है। मन्दी आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग पर सबसे घातक असर दिखा रही है। इस देशव्यापी मन्दी ने शिक्षित नौजवानों, गरीब-मध्यम किसानों, घरेलू महिलाओं और मजदूरों की कमर तोड़ दी है। महँगाई से रसोई का सारा बजट बिगड़ गया है और इससे घरेलू महिलाओं का तनाव बढ़ गया है। बेरोजगारी के चलते नौजवानों की आर्थिक-सामाजिक स्थिति गिर चुकी है। निराश होकर हर दो घण्टे में तीन बेरोजगार नौजवान अपनी जिन्दगी खत्म कर रहे हैं। मन्दी के बावजूद पूँजीपतियों का मुनाफा बढ़ता रहे, इसके लिए श्रम कानूनों को तोड़कर मजदूरों के निर्मम शोषण का रास्ता साफ कर दिया गया, जिससे मजदूर वर्ग की जिन्दगी नारकीय बन गयी है। सार्वजनिक कम्पनियों के निजीकरण के जरिये उसमें कार्यरत कर्मचारियों की रोजगार सुरक्षा और वेतन के स्थायित्व को खत्म कर दिया गया है। **ऐसे हालात से साफ पता चलता है कि सरकार आर्थिक संकट का सारा बोझ मेहनतकश वर्ग पर डालती जा रही है, यानी मुनाफा निजी और घाटा सामाजिक। इससे मेहनतकश वर्ग की जिन्दगी दिनोंदिन तबाह हो रही है।**

छोटे व्यवसायी और दुकानदारों का संकट तीन गुना बढ़ गया है। पहला, डीकैथलान, प्यूमा, नाइक जैसी विदेशी दैत्याकार कम्पनियाँ खुदरा बाजार पर कब्जा करती जा रही हैं, दूसरा, अमेजन और फ्लिपकार्ट ऑनलाइन व्यापार के जरिये ग्राहकों को खूब लुभा रही हैं, इसके लिए वे अपने ग्राहकों को बम्पर छूट दे रही हैं। इतनी छूट देना छोटे दुकानदारों के बस की बात नहीं है। जायज सी बात है कि हमारे छोटे दुकानदार इतनी बड़ी कम्पनियों से प्रतियोगिता में टिक नहीं सकते। तीसरा, बेरोजगारी से पीड़ित मध्यम वर्गीय घरों के नौजवान अपनी छोटी पूँजी के दम पर नयी दुकानें खोलकर बैठ जा रहे हैं। इस तरह तिहरी मार से छोटे व्यवसायी और दुकानदारों का रोजी-रोजगार संकट में है। इसके अलावा, जिन 25 लाख लोगों को वाहन डीलरों के पास सीधे रोजगार मिला हुआ है, वाहनों की बिक्री में गिरावट के चलते उनका रोजगार भी संकट में है।

सरकार ने अर्थव्यवस्था के पुनरुद्धार की आड़ में सामाजिक सुरक्षा का निजीकरण कर दिया है। यानी स्वास्थ्य और शिक्षा जैसे जन-कल्याण के कामों से हाथ खींचकर इसे निजी पूँजीपतियों के हवाले कर दिया गया है, जिससे पूँजीपतियों को अकूत मुनाफा हो रहा है, लेकिन मन्दी की मार से अब ये भी अछूते नहीं हैं। **निजी और सरकारी कर्मचारियों के पेंशन फण्ड को शेयर बाजार से जोड़कर सरकार ने सेवानिवृत्त लोगों की जिन्दगी को खतरे में डाल दिया है। अब सेवानिवृत्ति के बाद बुढ़ापे में लोग अपनी पेंशन के लिए शेयर बाजार के रहमोकरम पर रहेंगे।**

मेहनतकश वर्ग में आर्थिक संकट को लेकर उहापोह की स्थिति है। एक तरफ, उसकी आर्थिक हैसियत नीचे गिर रही है, उसकी जिन्दगी में उथल-पुथल मची हुई है, तो दूसरी तरफ, अपनी जिन्दगी की इन समस्याओं को वह अपने वर्ग की समस्या के रूप में नहीं देख पा रहा है। सत्ता पोषित दलाल मीडिया उसे व्यवस्था की उज्जवल तस्वीर दिखाने में काफी हद तक सफल हो रहा है। मजदूर वर्ग अपनी खराब हालत से परेशान हो, खुद को दोष देकर या एक-दूसरे से थोड़ी बहुत शिकवा-शिकायत करके चुप बैठ जाता है। उसे इन समस्याओं से पार पाने का कोई तरीका सूझ नहीं रहा है। **खराब होती जीवन स्थिति के चलते जनता के एक हिस्से में भयावह निराशा अपना पैर पसारती जा रही है। यह निराशा विनाशकारी है और आत्महत्या जैसे व्यवस्थाजन्य संकटों को बढ़ावा दे रही है।**

जन-सरोकार रखने वाली पत्र-पत्रिकाओं में आर्थिक संकट से जुड़ी जो खबरें आ रही हैं, वे आँखें चुधियाँ देने वाली हैं। रोज-ब-रोज इतनी खबरें आ रही हैं कि पाठक इन खबरों के जंगल में ही खो जाये। उन्हें समझकर सही नतीजे तक पहुँचना जरूरी है। यानी खबरों में छिपे सच को जान लेना बहुत जरूरी है। यह आर्थिक संकट के समाधान की दिशा में पहला कदम है।

हमने देखा कि पूँजीपति के मुनाफे की भूख ही आर्थिक संकट को पैदा करती है, जिसके चलते एक तरफ सम्पत्ति का पहाड़ खड़ा हो जाता है तो दूसरी ओर बहुसंख्य जनता की जिन्दगी में केवल तबाही रह जाती है। जबकि जो पूँजीपति वर्ग आर्थिक संकट को पैदा करता है, सरकार की नजरे-इनायत उसी पर होती है। यानी संकट से बचाव का पैकेज उसी को दिया जाता है। रोजमर्रे की आर्थिक घटनाओं ने साफ कर दिया है कि सरकार आर्थिक संकट को हल नहीं कर सकती और इस संकट के चलते मुनाफे में आयी कमी की भरपाई मेहनतकश वर्ग को अपने खून-पसीने से करनी पड़ रही है। अब उसके बर्दाश्त की सीमा पार हो गयी है। उसे एकजुट होकर अपने ऊपर हो रहे अन्याय के खिलाफ अपनी आवाज बुलन्द करनी होगी और एक ऐसी व्यवस्था के निर्माण में अपना योगदान देना होगा जो मन्दी के संकट से मुक्त हो। संकट का स्वरूप ढाँचागत है, समाधान भी सतही सुधार नहीं बल्कि बुनियादी ढाँचे में बदलाव ही हो सकता है।

भारत से दूर भागते विदेशी निवेशक

-- अनुराग मौर्य

जनवरी में देश के बड़े पूँजीपतियों ने महाराष्ट्र के नये मुख्यमंत्री उद्धव ठाकरे के साथ मीटिंग की, जिसमें इस बात पर जोर दिया कि महाराष्ट्र में निवेश के लिए अनुकूल माहौल तैयार किया जाये। उन्होंने चिन्ता जतायी कि विदेशी निवेशक भारत के बजाय वियतनाम में निवेश करना अधिक पसन्द कर रहे हैं। इससे साफ पता चलता है कि भारत में निवेश के जिस स्वर्ग का दावा किया जा रहा था, वह कहीं दिखायी नहीं दे रहा है। अमरीका-चीन व्यापार युद्ध के चलते कई कम्पनियाँ चीन से अपना उद्योग हटाकर दूसरे देशों में ले जा रही हैं। चीन से व्यापार हटाने वाली 56 कम्पनियों में से केवल 3 कम्पनियाँ ही भारत में अपनी पूँजी लगा रही हैं, जबकि 26 कम्पनियाँ वियतनाम, 11 कम्पनियाँ ताइवान और 8 कम्पनियाँ थाईलैण्ड जा रही हैं। भारत का एकाधिकारी पूँजीपति वर्ग जो आत्मनिर्भर विकास के नारे को कूड़ेदान में फेंककर विदेशी पूँजीपतियों का संश्रयकारी बन चुका है, उसे इस बात से काफी झटका लगा है कि भारत के बजाय विदेशी निवेशक वियतनाम, ताइवान और थाईलैण्ड को पसन्द कर रहे हैं। प्रधानमंत्री द्वारा दुनिया भर में घूम-घूमकर विदेशी पूँजी निवेशकों को रिझाने का कुल मिलाकर यही नतीजा है।

विदेशी निवेशकों के लिए भारत में चुनौतियाँ

भारत और चीन श्रम बल, श्रम कानूनों, मजदूरी के मामले में लगभग एक ही स्तर के हैं, फिर भी निवेशकों ने चीन को अधिक पसन्द किया और अब हालत यह है कि वे भारत आने से कतरा रहे हैं और वियतनाम का रुख कर रहे हैं। भारत से श्रम बल और सकल घरेलू उत्पाद के मामले में निचले पायदान पर खड़े देश बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को आकर्षित करने में कामयाब हो रहे हैं। ऐसा क्यों हो रहा है?

1) सिकुड़ता आन्तरिक बाजार

2014 में जब से भाजपा सरकार केन्द्र की सत्ता पर काबिज हुई है, उसके दो प्रमुख एजेण्डे हैं– आर्थिक विकास और हिन्दुत्व। आर्थिक विकास का नतीजा यह है कि बेरोजगारी, मन्दी और महँगाई से जनता बेहाल है। इससे लोगों की क्रयशक्ति गिर रही है। नौकरियाँ छिन जाने और वेतन कम हो जाने के चलते जिन लोगों की पहुँच बाजार तक थी, वे भी धीरे-धीरे बाजार से बाहर धकेल दिये जा रहे हैं। भारत में लगभग 12 करोड़ लोग मध्यम वर्ग में गिने जाते थे, जिनकी पहुँच बाजार तक थी, लेकिन इनकी संख्या में भी तेजी से गिरावट हो रही है। कोई भी विदेशी कम्पनी, जो किसी देश में पूँजी निवेश करती है, उसका ध्यान वहाँ के स्थानीय बाजार पर होता है, यानी निवेश के लिए कम्पनी ऐसा बड़ा बाजार तलाशती है, जहाँ उसका ज्यादा सामान बिक पाये। अगर वह सामान कहीं और बनायेगी तथा बेचने के लिए उसे दूसरा बाजार तलाशना पड़ेगा तो इस अनिश्चित स्थिति के चलते उसे नुकसान होगा। भारत की जनसंख्या 130 करोड़ से ऊपर हो रही है, लेकिन गरीबी और भुखमरी के चलते 100 करोड़ से अधिक लोग बाजार से बाहर कर दिये गये हैं। वे बाजार की चमक-दमक से दूर, हासिये पर पड़े हैं, जिनके लिए देश की आर्थिक गतिविधियों का कोई मतलब नहीं। ये वही लोग हैं, जो रात-दिन पेट भरने और जिन्दा रहने की जद्दो-जहद में नाममात्र की मजदूरी पर खटते रहते हैं। भला वे किस तरह विदेशी कम्पनियों को लुभा पायेंगे?

2) हिन्दुत्व के एजेण्डे से खराब होता सामाजिक माहौल

हिन्दुत्व का एजेण्डा जिसके चलते सामाजिक ढाँचा चरमरा गया है। फिर भी अभी भी यह एजेण्डा सामाजिक ध्रुवीकरण और वोट बैंक के लिए लाभदायक सिद्ध हो रहा है। लेकिन उद्योग के नजरिये से देखा जाये तो यह एजेण्डा भारतीय समाज को लगातार कई सालों से अस्थिर बनाये हुए है। भारत में हिन्दू-मुस्लिम के बीच फूट डालने वाली राजनीति आज अपने चरम पर है। भाजपा हिन्दू-मुस्लिम, राष्ट्रवाद, एनआरसी, गोरक्षा, लव-जेहाद जैसे ढेरों मुद्दों से लोगों के दिलों में नफरत का जहर भरती जा रही है। आखिर यह मामला उद्योग को कैसे प्रभावित करता है? इसका एक नमूना यह है कि पिछले दिनों कुछ इलाकों में कई बार और कई दिनों के लिए इण्टरनेट बन्द कर दिया गया। इसके चलते अमरीकी कम्पनियों ने भारत सरकार को अपने करोड़ों के घाटे का हवाला देते हुए इण्टरनेट बहाल करने को कहा है। इसके अलावा भारत में रोज ही लोग किसी न किसी इलाके में अपने बुनियादी हकों, आर्थिक, राजीनीतिक और सांस्कृतिक माँगों के लिए लड़ रहे

हैं। मजदूरों, किसानों, छात्रों, बेरोजगारों के अन्दोलन, तो पिछले दिन बढ़े ही हैं, अब जनता का बड़ा हिस्सा नागरिकता कानून के खिलाफ दिन-रात लड़ाई लड़ रहा है और पुलिसिया दमन भी झेल रहा है। अस्थिरता के ऐसे माहौल में विदेशी कम्पनियाँ भारत में पूँजी लगाने का जोखिम क्यों लेंगी? वे मुनाफे के लिए आती हैं तो घाटा क्यों झेलेंगी? अस्थिरता के ऐसे माहौल में जाने कौन-सी घड़ी में कौन-सा हिटलरी फरमान आ जाये और देश में आग लग जाये, कुछ पता नहीं। यहाँ वही लोग निवेश कर सकते हैं जो अपनी पूँजी डुबोने का जोखिम उठा सकते हों।

3) देशी-विदेशी पूँजी का अन्तर्विरोध

1990 के बाद से भारत सरकार ने देशी पूँजीपतियों के साथ गठजोड़ करने वाली विदेशी पूँजी को यहाँ आने का न्योता दिया। यह सिलसिला माल बेचने, उद्योग लगाने से शुरू होकर आज शेयर बाजार की सट्टेबाजी तक पहुँच चुका है। देशी विदेशी पूँजी के बीच साँठ-गाँठ का पहलू ही मुख्य है, लेकिन उनके बीच अन्तर्विरोध भी हैं। देशी-विदेशी पूँजी का हित एक-दूसरे से टकराता है। मुनाफे की होड़ में दोनों एक-दूसरे से आगे निकलना चाहती हैं। भारत सरकार विदेशी निवेश के लिए लालायित रहती है और ऐसा वह देशी पूँजी के हित में करती है। लेकिन देशी पूँजीपति देश के बाजार पर अपना नियंत्रण गँवाना भी नहीं चाहते जबकि बढ़ती विदेशी पूँजी धीरे-धीरे बाजार को अपने नियन्त्रण में लेती जा रही है। इसे एक उदाहरण से देख सकते हैं।

हाल ही में अम्बानी ने जिओ-मार्ट लॉन्च करने की घोषणा की। इससे अमेजन और फ्लिपकार्ट से उसका अन्तर्विरोध तीखा हो गया है। दोनों ऑनलाइन व्यापार में अपना दावा ठोंक रही हैं। पिछले दिनों अमेजन ने भारत में एक अरब डॉलर निवेश की घोषणा की। इस पर पीयूष गोयल का बयान आया है कि अमेजन हमें कोई खैरात नहीं दे रही है। दरअसल, अमेजन भारत के ऑनलाइन बाजार पर कब्जा करने के लिए निवेश कर रही है। सरकार खुले मन से भले ही कितना ही विनम्र होकर निवेशकों को आमंत्रण देती हो, लेकिन वह अम्बानी जैसे चहेते पूँजीपतियों के दबाव से मुक्त नहीं हो सकती क्योंकि इन्हीं पूँजीपतियों ने उसे सत्ता के गलियारे तक पहुँचाया है। यही किस्सा जिओ सिम बनाम वोडाफोन और एयरटेल के टकराव का भी है। सरकार ने देशी कम्पनी जिओ को भरपूर फायदा पहुँचाया तथा वोडाफोन और एयरटेल को तबाही के रास्ते पर धकेल दिया। ऐसी घटनाओं के चलते विदेशी निवेशक दूर जा रहे हैं। हालाँकि देश की जनता को लूटने-खसोटने में और पर्यावरण को तबाह करने में देशी-विदेशी पूँजी में से कोई पीछे नहीं है। पिछले 30 सालों में देशी-विदेशी पूँजी के गठजोड़ ने यह सब कर दिखाया है।

4) छोटे व्यवसायी-दुकानदार और देशी-विदेशी पूँजी के बीच का अन्तर्विरोध

देशी-विदेशी एकाधिकारी पूँजी के बढ़ते वर्चस्व ने छोटे कारोबारियों और दुकानदारों का धन्धा चौपट कर दिया है। इनकी आर्थिक हालत बद से बदतर होती जा रही है। हाल ही में दिल्ली में इन्होंने एक संगठित रैली की है। उन्होंने सरकार की आर्थिक नीतियों और ऑनलाइन कारोबारी कम्पनियों– अमेजन और फ्लिपकार्ट के खिलाफ प्रदर्शन किया। व्यापारियों ने 'अमेजन गो बैक' के नारे भी लगाये। दूसरी तरफ अमेजन के मालिक जेफ बेजोस ने एक अरब डॉलर तक का निवेश करने की घोषणा कर दी है। ऐसे में छोटे व्यवसायियों और दुकानदारों को खुश करने तथा अपने राजनीतिक आधार को बचाने के लिए सरकार के मंत्री पीयूष गोयल ने कहा है कि अमेजन हम पर कोई अहसान नहीं कर रही है। साथ ही पिछले दिनों सरकार ऑनलाइन बाजार पर निगरानी रखने के लिए ई-कामर्स के नये नियामक को लेकर आयी हैं, जिससे विदेशी पूँजी के व्यापार पर नियंत्रण रखा जा सके। बड़े कारोबारियों का कहना है कि इससे निवेशकों पर बुरा असर पड़ेगा। वे अपना निवेश यहाँ से लेकर जा भी सकते हैं। ऊपरी तौर से देखें तो सरकार का बयान और नया नियामक छोटे व्यवसायियों और दुकानदारों को खुश तो जरूर करता है लेकिन सरकार की पूरी कवायद जिओ-मार्ट के लिए रास्ता साफ करने के सिवा और कुछ नहीं है। हालाँकि छोटे दुकानदारों के लिए जिओ-मार्ट और फ्लिपकार्ट में बस भूतनाथ और पिचाशनाथ भर का ही फर्क है।

5) श्रम उत्पादकता और कार्यकुशलता का निचला स्तर

हमारे देश की जनता के बड़े हिस्से में वैज्ञानिक चेतना के बजाय अंधविश्वास, कूपमण्डुकता, क्षेत्रवाद, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, ऊँच-नीच की दुर्भावना भरी हुई है। लोगों को समय का मूल्य पता नहीं, बेकार के अनुत्पादक कामों में अपना समय नष्ट करते रहते हैं। उनका दृष्टिकोण भी व्यवसायिक नहीं है और उनके शिक्षण-प्रशिक्षण का स्तर भी खराब है। यह सब यहाँ की राजनीति की देन है जो अपने निहित स्वार्थों के चलते जनता में प्रगतिशील और वैज्ञानिक नजरिया देने का प्रयास नहीं करती, बल्कि उनकी चेतना को कुन्द करने का ही काम करती है। इन्हीं वजहों से भारत में श्रम उत्पादकता काफी कम है। वियतनाम, थाईलैण्ड और ताइवान के मुकाबले हमारे देश में श्रमिकों की संख्या तो कई गुना अधिक है, लेकिन मजदूरों की कार्यकुशलता कम आँकी जाती है। इसके चलते भी उत्पादन के क्षेत्र की विदेशी कम्पनियाँ भारत के बजाय दूसरे देशों को अधिक महत्त्व देती हैं।

6) मजबूत आर्थिक ढाँचें का न होना

भारतीय अर्थव्यवस्था आज मन्दी की शिकार है। आज सरकार के पास न तो सशक्त आर्थिक ढाँचा है और न ही कारगर नीतियाँ जिससे वह मन्दी से देश को उबार सके या कम से कम मुकाबला ही कर सके। अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों, जैसे-- विनिर्माण, भवन-निर्माण, खेती और सेवा क्षेत्र सभी की हालत देखकर ऐसा लगता है कि इन्हें लकवा मार गया हो। बैंकिंग व्यवस्था पूरी तरह तबाह हो गयी है। बड़े उद्योगों के सहयोगी, पार्ट-पुर्जा बनाने वाले उद्योग भी तबाही के कगार पर हैं।

इसके साथ ही कुछ और समस्याएँ भी विदेशी पूँजी को रिझाने में बाधक हैं। हालाँकि सरकार ने इस दिशा में एड़ी-चोटी का पसीना एक करके कई बदलाव किये हैं। उदाहरण के लिए सरकार ने देशी-विदेशी पूँजी के हित में श्रम कानूनों को बहुत ही निरर्थक बना चुकी है। अर्थव्यवस्था के कई क्षेत्रो में सौ प्रतिशत एफडीआई को मंजूरी भी दे चुकी है। विनिवेश की सीमा भी बढ़ाती जा रही है। कारपोरेट टैक्स में कमी, सस्ती दर पर बिजली, पानी, जमीन, सड़क मुहैया कराना और पूँजी की सुरक्षा की गारण्टी करना भी विदेशी पूँजी को रिझाने के ही प्रयास हैं। विदेशी पूँजी की राह में लाल कालीन बिछायी गयी और अपना घर-बार छोड़कर पीएम मोदी करोड़ों रुपये कुर्बान करके दुनिया भर में उसे बुलाने गये। लेकिन वह बेवफा आयी नहीं। शीर्ष उद्योगपतियों का भी यही मानना है कि निवेश के लिए अनुकूल माहौल नहीं बन पा रहा है। महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री उद्धव ठाकरे के यहाँ जाकर मुकेश अम्बानी, टाटा, कल्याणी और अन्य शीर्ष उद्योगपतियों द्वारा अपना दुखड़ा रोने से ऐसा लगता है जैसे शिकायत की सुनवाई शीर्ष अदालत में नहीं हुई तो वह मामले को डिस्ट्रिक्ट कोर्ट में ले गये हों, क्योंकि ये सभी पीएम मोदी के करीबी और चहेते रहे हैं। अनुकूल माहौल की सिफारिश तो वहाँ करनी चाहिए थी। लेकिन लगता है उनको मनचाहा फल नहीं मिल रहा है और अब पूँजीपति नये चेहरों को अपना पोस्टर बॉय बनाना चाहते हैं।

○

ग्रामीण गरीबों के लिए गढ़ा गया एक संकट

-- राजेन्द्रन नारायणन

राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर (एनपीआर) और एक सम्भावित राष्ट्रीय रजिस्टर ऑफ सिटीजन (एनआरसी), जो एक मानवीय संकट का आगाज करेगा, ऐसे समय में आगे बढ़ाया जा रहा है जब ग्रामीण जनता भयावह संकट की गिरफ्त में है। जल्द ही बजट आने वाला है, इसलिए आइये, देखें कि भाजपा की अगुवाई वाली सरकार ने ग्रामीण गरीबों के हित में अब तक क्या किया है।

एक भयावह तस्वीर

राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय (एनएसओ) द्वारा हर पाँच साल में एक बार उपभोक्ता व्यय सर्वेक्षण (सीईएस) किया जाता है। इसमें परिवारों के खर्च करने के पैटर्न के बारे में विवरण संग्रह किया जाता है। इससे एकत्रित आँकड़े आर्थिक योजना और बजटीय आवण्टन में सुधार के लिए सूचना का एक महत्वपूर्ण स्रोत होते हैं। हालाँकि, केन्द्र सरकार ने 2017-2018 के सबसे हालिया सर्वेक्षण के आँकड़ों को दबा दिया। किसी तरह बाहर आ गयी रिपोर्ट को बिजनेस स्टैंडर्ड द्वारा प्रकाशित किया गया, जिसके मुताबिक 40 वर्षों में पहली बार उपभोक्ता खर्च में गिरावट आयी। 'द इण्डिया फोरम' में प्रोफेसर एस सुब्रमण्यन द्वारा किया गया इस रिपोर्ट का एक उल्लेखनीय विश्लेषण 2011-2012 और 2017-2018 के बीच सीईएस और मासिक प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय (एमपीसीई) में तुलना करता है। यह ग्रामीण भारत की एक भयावह तस्वीर प्रस्तुत करता है।

उनके लेख के अनुसार, यदि हम ग्रामीण आबादी का सबसे गरीब से सबसे अमीर तक श्रेणीबद्ध करें, और उन्हें 10 समूहों में विभाजित करें, तो हम पाते हैं कि हर समूह के लोगों का मासिक उपभोग व्यय गिरा है। इसका मतलब है कि ग्रामीण समाज की सभी श्रेणियों की खपत, यानी कि आय में कमी आयी। उदाहरण के लिए, 2011-2012 में ग्रामीण आबादी के सबसे गरीब लोगों के औसत मासिक उपभोग का स्तर 1,138 था। 2017-2018 में यह घटकर 1,082 रह गया। कुल मिलाकर, सभी श्रेणियों में 2011-12 में औसत मासिक घरेलू खपत 1,430 थी जो घटकर 2017-18 में 1,304 हो गयी, यानी लगभग 9 प्रतिशत की तीव्र गिरावट आयी। दूसरे शब्दों में, बड़ी संख्या में लोग गरीब हो गये हैं और इसलिए उनके पास खर्च करने के लिए कम पैसे हैं।

ऐसी असुविधाजनक सच्चाइयों को भाँपते हुए, सरकार ने 'डेटा गुणवत्ता मुद्दों' का हवाला देकर सर्वेक्षण के नतीजों को टालने की कोशिश की। असुविधाजनक तथ्यों से सामना होने पर पारदर्शिता के बजाय उनको छुपाने की यह प्रवृत्ति नयी नहीं है। सरकार ने 2017-2018 के मियादी

श्रम बल सर्वेक्षण (पीएलएफएस) डेटा को जारी करने में भी देरी की थी। जनवरी 2019 में, पीएलएफएस का वह डेटा लीक हो गया था, जिससे पता चलता था कि भाजपा के नेतृत्व वाली सरकार के तहत बेरोजगारी पिछले 45 साल के उच्च स्तर पर पहुँच गयी थी। सरकार ने जवाब दिया कि लीक हुई रिपोर्ट 'एक मसौदा रिपोर्ट' थी और आम चुनाव परिणाम घोषित होने के बाद तक डेटा जारी नहीं किया था। हालाँकि, सच्चाई बदली नहीं। वर्षों के संघर्ष से हासिल, पारदर्शिता को रोज-ब-रोज कम किया जा रहा है। डेटा को इस तरह व्यवस्थित रूप से कुचले जाने से संस्थागत मूल्य और राजनीतिक अर्थव्यवस्था तबाह होती है।

एनएसओ की ताजा रिपोर्ट बताती है कि उपभोक्ता खाद्य मूल्य सूचकांक मुद्रास्फीति अगस्त 2019 में 2.99 प्रतिशत से बढ़कर दिसम्बर 2019 में 14 प्रतिशत से अधिक हो गयी। सबसे तेज वृद्धि सब्जी की कीमतों (60 प्रतिशत से अधिक) में देखी गयी जबकि दालों की कीमत में 15 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हुई। हो सकता है कि कीमतों में वृद्धि से चन्द किसानों को लाभ हो, और सब्जी की कीमतों में वृद्धि मौसमी हो सकती है, लेकिन यह भूमिहीन और छोटे किसानों को कैसे प्रभावित करेगी? इन रिपोर्टों के अनुसार, यदि चार सदस्यों वाले एक परिवार को लिया जाये, यहाँ तक कि सबसे अमीर 5 प्रतिशत ग्रामीण आबादी को भी, तो अनाज और दालों पर प्रति व्यक्ति प्रति दिन खर्च 2.50 रुपये से कम है। गरीब वर्गों के परिवारों में, खर्च करने की क्षमता प्रति व्यक्ति प्रति दिन लगभग 1 रुपया है। इसे समझने के लिए यही जान लेना काफी है कि आजकल एक अण्डे की कीमत 7 रुपये और एक लीटर दूध की कीमत 55 रुपये है। 2011 की सामाजिक-आर्थिक जाति जनगणना के अनुसार, 56 प्रतिशत परिवारों के पास अपनी जमीन नहीं है और लगभग 51 प्रतिशत परिवार आय के लिए कभी-कभार मिलने वाली दिहाड़ी मजदूरी पर निर्भर हैं। ग्रामीण आबादी के इस हिस्से के लिए, मनरेगा एक जीवन रेखा के रूप में काम कर सकता है। हालाँकि, पिछले पाँच वर्षों में, मनरेगा के लिए बजट आवण्टन बहुत ही कम रहा है। प्रत्येक वर्ष के आवण्टन का छठा हिस्सा पिछले वर्षों की बकाया मजदूरी भुगतान के मद में चला जाता है। अक्टूबर के बाद से ही केन्द्र सरकार द्वारा अधिकांश राज्यों के भुगतान जारी नहीं किये गये हैं।

उच्चतम न्यायालय के आदेशों का उल्लंघन करते हुए, वेतन भुगतान में लगातार देरी और कम मजदूरी दर, मजदूरों को मनरेगा का काम करने से हतोत्साहित करती है। दरअसल, कम आमदनी और खाद्य पदार्थों की ऊँची कीमतों की दोहरी बुराई का मतलब है कि भूमिहीन गरीबों को अपने भोजन की खपत में और भी कटौती करनी होगी। इसके चलते कम पोषण के नतीजे सामने आयेंगे, जो उनके शारीरिक और मानसिक विकास को कम कर सकते हैं। अगर काम की माँग, बकाया मजदूरी का भुगतान और मुद्रास्फीति का हिसाब लगाया जाय, तो मनरेगा के लिए 1 लाख करोड़ से कम बजट आवण्टन अपर्याप्त होगा।

गलत लक्ष्य

यह दुखद है कि भाजपा के नेतृत्व वाली सरकार ग्रामीण मजदूरी बढ़ाने और मनरेगा के कामकाज और भुगतान में सुधार करने पर ध्यान केन्द्रित करने के बजाय नागरिकता (संशोधन) अधिनियम और राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर (एनपीआर) जैसी विभाजनकारी नीतियों पर संसाधनों को बर्बाद कर रही है। एनपीआर की अनुमानित लागत 4,000 करोड़ रुपये है, यह राशि मौजूदा मजदूरी दरों पर मनरेगा के माध्यम से 100 दिनों के लिए 2.2 करोड़ भूमिहीन मजदूरों की सहायता कर सकती है। इसके अलावा, कश्मीर चैम्बर ऑफ कॉमर्स की रिपोर्टों के अनुसार, धारा 370 में मनमाना बदलाव के कारण, कश्मीर घाटी को लगभग 18,000 करोड़ रुपये का नुकसान हुआ है, और 5 अगस्त के बाद से वहाँ लगभग 5 लाख लोग अपनी नौकरी गँवा चुके हैं। अगर जम्मू और लद्दाख को भी इस गणना में जोड़ा जाये तो यह और भी ज्यादा होगा। भारत के कुछ हिस्सों से वहाँ आनेवाले 4 लाख से अधिक प्रवासी मजदूरों को, जिनमें से ज्यादातर बिहार और उत्तर प्रदेश के थे, 5 अगस्त को कश्मीर घाटी छोड़ने को मजबूर किया गया और उन्हें रातोंरात बेरोजगार बना दिया गया था। इन नुकसानों में अगर "स्टेटलेस" करार दिये गये लोगों के लिए डिटेंशन सेन्टर चलाने का खर्च भी जोड़ लें तो हम एक विराट बनावटी संकट को निहार रहे हैं। महिलाएँ, विशेष रूप से, शादी के बाद ससुराल जाने के कारण एक बड़ी कीमत चुकाएँगी और क्योंकि उनके पास प्रासंगिक दस्तावेज नहीं होते हैं। जब केन्द्र सरकार प्रधानमंत्री मातृ वन्दना योजना कार्यक्रम के तहत ग्रामीण महिलाओं को दस्तावेजों में भिन्नता के कारण धन नहीं दे सकती है, तो एनपीआर-एनआरसी को लागू करना गाँव के गरीबों की जिन्दगी में कितनी भारी तबाही लाएगी, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

(आभार-- द हिन्दू)

(2 फरवरी 2020 को नया बजट आ गया। इसके बारे में इस लेख में पहले ही जाहिर की गयी आशंकाएँ सच साबित हुईं, जो इसके बाद वाले लेख से और स्पष्ट हो जाता है।-- अनु.)

बजट-2020 : नवउदारवाद और कींसवाद का घटिया मिक्स्चर

-- मुकेश असीम

फिलहाल इस बात पर कोई विवाद नहीं कि भारतीय पूँजीवादी अर्थव्यवस्था गम्भीर संकट में है जिसके चलते आम मेहनतकश जनता का जीवन अत्यन्त कष्टपूर्ण होता जा रहा है। इस बजट से पहले बहस सिर्फ इस मुद्दे पर ही थी कि क्या सरकार सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों पर खर्च कम कर वित्तीय घाटा नियंत्रित करने की नवउदारवादी नीतियों को जारी रखेगी या अर्थव्यवस्था को किकस्टार्ट करने के लिए सरकारी खर्च बढ़ाने की कींसवादी नीति अपनायेगी। बहुत से आर्थिक विशेषज्ञ यह उम्मीद कर रहे थे कि सरकार आम मेहनतकश लोगों व मध्यम वर्ग के हाथ में कुछ पैसा पहुँचाने का प्रयास करेगी ताकि बाजार में उपभोक्ता माँग का विस्तार हो जिससे उत्पादन के क्षेत्र में पूँजी निवेश फिर से शुरू हो सके। इसके लिए मनरेगा के लिए बजट बढ़ाने, शहरों में रोजगार गारण्टी योजना शुरू करने, मध्यम वर्ग के लिए आयकर में छूट बढ़ाने आदि की चर्चा चल रही थी।

किन्तु जब 31 जनवरी को सालाना बजट पूर्व आर्थिक सर्वेक्षण संसद में प्रस्तुत किया गया तभी यह बात स्पष्ट हो गयी थी कि सरकार की वित्तीय स्थिति अच्छी नहीं है और वह विनिवेश, निजीकरण, व्यवसायीकरण को तेज करने व शिक्षा, स्वास्थ्य, आदि सामाजिक सेवाओं पर खर्च घटाने की नवउदारवादी नीतियों को जारी रखेगी। आर्थिक सर्वे में सार्वजनिक उद्यमों का निजीकरण तेज करने, खाद्य सबसिडी घटाने, शिक्षा का व्यवसायीकरण जारी रखने, बाजार के अदृश्य हाथ पर भरोसा करने और सरकारी हस्तक्षेप को कम करने पर जोर दिया गया था।

वित्त मंत्री ने जब बजट पेश किया तो वे आर्थिक सर्वे में कही गयी बातों पर ही आगे बढ़ती नजर आयीं। पर बजट का आय-व्यय खाते का हिसाब देखें तो यह बजट नवउदारवाद और कींसवाद दोनों की सबसे बदतर बातों का घटिया मिक्स्चर है, यानी सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों पर खर्च में तो भारी कटौती करने के बावजूद सरकार का बजट घाटा भी नियंत्रित होने के बजाय बहुत ज्यादा बढ़ गया। भारत जैसे देश में जो 117 देशों के भूख सूचकांक में 102 वें स्थान पर है वहाँ बजट में खाद्य सबसिडी का बजट 70 हजार करोड़ रुपये घटा दिया गया है-- 1.85 लाख करोड़ रुपये से 1.15 लाख करोड़ रुपये। वैसे तो इस राशि को भी वास्तव में खर्च किये जाने पर शक है क्योंकि इस साल में भी बजट अनुमान 1.85 लाख करोड़ रुपये के बजाय संशोधित अनुमान के अनुसार वास्तविक खर्च 1.08 लाख करोड़ रुपये ही किया जा रहा है। इसका अर्थ है कि पहले ही लगभग दो लाख करोड़ रुपये के कर्ज में डूब चुकी फूड कार्पोरेशन पूरी तरह दिवालिया होने के कगार पर है और खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत आने वाली सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) का भविष्य समाप्ति की ओर है। देश की सबसे गरीब जनता के लिए यह खबर मौत की घण्टी के बराबर है क्योंकि पहले ही झारखण्ड जैसे राज्यों से राशन न मिलने से मौतों की खबरें आती रही हैं। इसके अतिरिक्त शहरी रोजगार गारण्टी शुरू करना तो दूर रहा, बजट में ग्रामीण क्षेत्र के मजदूरों के लिए मनरेगा योजना पर आवंटन में भी 9 हजार करोड़ की कटौती कर दी है।

सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों पर दूसरा बड़ा हमला स्वास्थ्य सेवाओं पर है जहाँ एक ओर, महँगाई दर की तुलना में देखें, तो खर्च का बजट प्रावधान घट गया है, वहीं दूसरी ओर, देश में डॉक्टरों की कमी दूर करने के नाम पर जिला अस्पतालों को निजी क्षेत्र को सौंपने का षडयंत्र किया गया है। बजट घोषणा के अनुसार पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप (पीपीपी) मॉडल में जिला अस्पतालों के साथ मेडिकल कॉलेज खोले जायेंगे। मेडिकल कॉलेज के लिए शुरुआती पूँजी भी निजी क्षेत्र को सरकार ही देगी जिसका पैसा मेडिकल उपकरणों पर सेस लगाकर जुटाया जायेगा, यह सेस बजट में लगा भी दिया गया है यानी बहुत से मेडिकल उपकरण और भी महँगे हो जायेंगे जिसका खामियाजा अन्त में मरीजों को ही भुगतना होगा। इस योजना का अर्थ है कि जिला अस्पतालों का पहले से मौजूद पूरा बहुमूल्य ढाँचा निजी क्षेत्र के हाथ में होगा जिन्हें पूँजी भी खुद नहीं जुटानी होगी। इसका प्रयोग कर वे महँगी फीस वाले निजी मेडिकल कॉलेज खोलकर खूब मुनाफा कमायेंगे, साथ ही कुछ सालों में जिला अस्पतालों के मालिक भी हो जायेंगे और देश की गरीब मेहनतकश जनता के लिए सस्ते अस्पताली इलाज का अन्तिम सहारा भी छिन जायेगा। इसको एक काल्पनिक स्थिति न समझें क्योंकि मोदी के गुजरात का मुख्यमंत्री रहते भुज में भूकम्प पीड़ितों के लिए सार्वजनिक धन से खोला गया अस्पताल इसी तरह पीपीपी मॉडल के जरिये अदानी की कम्पनी को सौंपा जा चुका है। असल में अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र में इस पीपीपी मॉडल का अर्थ ही हो गया है पब्लिक सम्पत्ति की प्राइवेट लूट।

किसानों की आय दुगुनी करने और ग्रामीण मूलभूत ढाँचे के नाम पर असल में कृषि आधारित उद्योगों को बड़ी सुविधाएँ और रियायतें देने की घोषणा की गयी है। **किसान रेल, कृषि उड़ान, रेफ्रीजरेटेड ट्रक, वेयरहाउस, आदि के लिए खर्च कृषि उद्यमी और व्यापारी बन चुके अमीर पूँजीवादी फार्मरों और कृषि आधारित उद्योग चलाने वाले पूँजीपतियों के लाभ के लिए है। किसानों के 86 प्रतिशत से अधिक भाग जिसके पास एक हेक्टेयर से भी कम जमीन है उसे इससे क्या फायदा है? उनके लिए तो न्यूनतम समर्थन मूल्य देने के वादे से भी सरकार पीछे हट गयी है।** जो 1500 करोड़ का खर्च उस मद में पिछले साल घोषित हुआ था उसमें से लगभग नहीं के बराबर खर्च किया गया है। इन गरीब, सीमान्त किसानों को तो अपनी उपज उन अमीर फार्मरों को ही कौड़ियों के दाम बेचनी पड़ेगी जो इन किसान रेल, उड़ान, ट्रक, वेयरहाउस के जरिये व्यापार करके कृषि उत्पाद को शहरी उपभोक्ताओं को कई गुना महँगे दामों पर बेचकर तगड़ा मुनाफा कमायेंगे। ग्रामीण क्षेत्र में पूँजीपति फार्मरों का यह वर्ग भूमिहीन खेत मजदूरों और गरीब सीमान्त किसानों का बड़ा शोषक है। कम मजदूरी पर श्रम कराकर यह खेत मजदूरों का तो शोषण करता ही है, फसल के वक्त गरजबेचा छोटे किसानों की उपज को यही सस्ते दामों पर खरीदकर फिर सरकारी एजेंसियों या बड़े पूँजीपतियों को ऊँचे दामों पर बेचकर मुनाफा कमाता है। उपरोक्त इनफ्रास्ट्रक्चर से जिस बाजार में पहुँच के जरिये किसानों की आय बढ़ाने की बात की गयी है वह सिर्फ इन्हीं कृषि उपज व्यापारियों के मुनाफे को बढ़ाने के लिए।

पूँजीपतियों के उद्योगों के लिए आवश्यक नकदी फसलों के उत्पादन में लग जाने के बाद से सीमान्त किसान वर्ग अब खाद्य उत्पादों का भी विक्रेता कम, ग्राहक अधिक होता जा रहा है। गाँव के भूमिहीन मजदूर तो खाद्य पदार्थों के ग्राहक हैं ही। ग्रामीण बाजार के राष्ट्रीय बाजार में विलय की पहले से जारी प्रक्रिया इसके बाद पूरी हो जायेगी और इसके बाद गाँवों के खरीदार गरीब किसानों/मजदूरों को भी खाद्य पदार्थ तुलनात्मक रूप से सस्ते ग्रामीण बाजार दामों के बजाय लगभग शहरी बाजार मूल्यों पर ही खरीदने होंगे। यह ग्रामीण भूमिहीनों और सीमान्त किसानों के जीवन को तकलीफ के नये स्तर तक ले जायेगा।

इसके राजनीतिक पक्ष को देखें तो गाँवों से जिला स्तर तक की राजनीति में तो प्रधान तौर पर एवं राज्य-देश स्तर तक की राजनीति में भी यह वर्ग अभी फासीवाद के लिए लठैत/गोलीबाज उपलब्ध कराने वाला मुख्य आधार है-- इन भूपतियों में पुराने ब्राह्मण/क्षत्रिय जातियों के ही नहीं तमाम पिछड़ी कही जाने वाली जातियों के भूपति भी शामिल हैं। अतः कुल पूँजीवादी मुनाफे में कुछ बेहतर हिस्सा इस वर्ग की मुख्य माँग रही है जो लाभकारी कृषि की शब्दावली में प्रस्तुत की जाती है ताकि सीमान्त किसानों को भी "लाभ" के इस मायावी सपने में फँसाकर इन अमीर फार्मरों के पीछे ही गोलबन्द करने में सफल हो सके, हालाँकि उन किसानों के हित इन "किसानों" के ठीक विपरीत हैं।

इस बजट में शिक्षा वंचितों और निम्न मध्यम वर्ग की पहुँच से बाहर करने की प्रक्रिया को भी और तेज किया गया है। खुद बजट पूर्व सरकारी आर्थिक सर्वेक्षण ने यह बात मानी थी कि निजीकरण व्यवसायीकरण से शिक्षा महँगी होकर समाज के वंचित समुदायों की पहुँच से बाहर हो रही है, खास तौर पर उच्च शिक्षा। लेकिन किया क्या जाये? सर्वे ने कहा-- निजीकरण जारी रखो!

बजट में भी कहा गया कि विदेशी कर्ज और पूँजी निवेश से शिक्षा संस्थान उन्नत किये जायेंगे। नतीजा सरकार को अच्छी तरह मालूम है कि शिक्षा महँगी होकर आम मेहनतकश जनता, खास तौर पर वंचित समुदायों की पहुँच से बाहर हो जायेगी। फिर ये लोग क्या करें? इनके लिए बताया गया कि 100 बड़े संस्थान ऑनलाइन कोर्स शुरू करेंगे, वंचित और गरीब लोग उससे पढ़ लें, उन्हें कॉलेज जाकर क्या करना है, वे मजदूर हैं, उन्हें मजदूर ही रहना है! असल में यह अधिसंख्य मेहनतकश जनता को शिक्षा से वंचित करने की शासक पूँजीपति वर्ग की सोची समझी सर्वसम्मत नीति है और कोई चुनावी पार्टी इस पर मुँह नहीं खोलती कि सबके लिए उत्तम, समान और सुलभ सार्वजनिक शिक्षा का वादा कहाँ गया।

शिक्षा, स्वास्थ्य, खाद्य सुरक्षा, महिला-बाल कल्याण, दलित-आदिवासी कार्यक्रमों सभी के विस्तार में जायें तो व्यय में कटौती या चोर दरवाजे से पूँजीपतियों को लाभ पहुँचाने की ऐसी ही स्थिति है, लेकिन सरकार का वित्तीय घाटा फिर भी अनियंत्रित ढंग से बढ़ा है। खुद सरकार मान रही है कि इस वर्ष के लक्ष्य 3.3 प्रतिशत के मुकाबले यह 3.8 प्रतिशत पर पहुँच गया है। किन्तु अगर सरकार द्वारा बजट से बाहर एफसीआई, आदि सार्वजनिक कम्पनियों के नाम पर लिए गये कर्ज को भी जोड़ा जाये तो अधिकांश विश्लेषकों के अनुसार यह 8 से 10 प्रतिशत के आसपास पहुँच गया है। इसका सबसे बड़ा कारण है अर्थव्यवस्था में मन्दी, सरकार द्वारा पूँजीपति वर्ग को दी गयी बहुतेरी रियायतों एवं उनके द्वारा की गयी भारी टैक्स चोरी के कारण टैक्स वसूली में भारी कमी। इस घाटे को पूरा करने के लिए सरकार को तमाम तरह के उपाय करने पड़ रहे हैं जैसे रिजर्व बैंक के रिजर्व कोष को खाली करना, सार्वजनिक उद्यमों एवं सम्पत्तियों को बेचना, आदि। इसी क्रम में अब सार्वजनिक क्षेत्र की महाकाय वित्तीय कम्पनी एलआईसी में सरकारी शेयर बेचने का प्रस्ताव किया गया है। किन्तु सवाल है कि सम्पत्ति बेचने की एक सीमा है, उसके बाद क्या? अभी तो यही कहा जा सकता है कि अन्त में इन पूँजी परस्त नीतियों से हुए सरकारी घाटे का सारा बोझ विभिन्न तरह से आम मेहनतकश जनता के सिर पर ही लादा जाना है। स्पष्ट है कि यही नीतियाँ जारी रहीं तो देश की आम जनता को 'अच्छे दिनों' के नाम पर अभी बहुत अधिक तकलीफदेह दिन देखने बाकी हैं।

सार्वजनिक कम्पनियों का विनिवेशीकरण या नीलामी

-- जुनूनी विशाल

केन्द्र सरकार जिन 5 बड़ी कम्पनियों के हिस्से को बेचने की योजना बना रही है, उनमें बीपीसीएल, एससीआई, कॉनकोर, एनईईपीसीओ (नीपको) और टीएचडीसीआई शामिल हैं। इनमें से नीपको और टीएचडीसीआई की पूरी हिस्सेदारी बेचने की योजना बनायी है, जिसके लिए केन्द्र सरकार के विनिवेश विभाग ने 12 विज्ञापन जारी किये हैं। इन विज्ञापनों के जरिये परिसम्पत्ति का निर्धारण करनेवाले की नियुक्ति और हिस्सा बेचने की बोलियाँ मँगायी गयी हैं। अगर कम्पनियों में सरकारी हिस्सेदारी 51 प्रतिशत से कम होती है तो ये कम्पनियाँ कैग और सीवीसी के दायरे से बाहर हो जाएँगी। नीति आयोग के उपाध्यक्ष राजीव कुमार ने बताया है कि केन्द्र सरकार के पास बिक्री के लिए 46 कम्पनियों की एक सूची है और कैबिनेट ने इनमें 24 को बेचने की स्वीकृति दे दी है। दरअसल भारत सरकार का राजकोषीय घाटा बढ़ते-बढ़ते 6.45 लाख करोड़ रुपये को पार कर गया है। उसे ही पूरा करने के लिए सरकार ने इस साल 1.05 लाख करोड़ रुपये विनिवेश के जरिये जुटाने का लक्ष्य रखा है। यह किसी से छिपी बात नहीं है कि सरकार ने सार्वजनिक कम्पनियों को निजी हाथों में बेचने को ही 'विनिवेशीकरण' का लुभावना नाम दिया है।

केन्द्र सरकार की इन कम्पनियों में अलग-अलग हिस्सेदारी है। सरकार ने दर्जनों कम्पनियों में अपनी हिस्सेदारी 51 प्रतिशत से कम करने की योजना बनायी है। कण्टेनर कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया (कॉनकोर) में सरकार की हिस्सेदारी 54.8 प्रतिशत है, इसमें से वह 30.8 प्रतिशत को बेच देगी। टिहरी हाइड्रो डेवेलपमेण्ट कॉर्पोरेशन इण्डिया लिमिटेड (टीएचडीसीआई) में 75 प्रतिशत केन्द्र सरकार और 25 प्रतिशत उत्तर प्रदेश सरकार की हिस्सेदारी है। निमुलीगढ़ रिफाइनरी को छोड़कर सरकार की भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेट लिमिटेड (बीपीसीएल) में सरकार अपनी कुल 53.29 प्रतिशत हिस्सेदारी और शिपिंग कॉर्पोरेशन ऑफ इण्डिया (एससीआई) की अपनी पूरी 63.75 प्रतिशत हिस्सेदारी बेचने को तैयार है। सार्वजनिक क्षेत्र की बिजली कम्पनी एनटीपीसी के निदेशक मण्डल ने नीपको में भारत सरकार की पूरी 100 प्रतिशत हिस्सेदारी और टीएचडीसी में 74.5 प्रतिशत हिस्सेदारी बेचने की स्वीकृति दे दी।

एयर इण्डिया को बेचने के लिए सरकार उतावली है। लेकिन उसे कोई खरीदने के लिए तैयार नहीं दिख रहा है। पहले सरकार इसमें 24 प्रतिशत हिस्सेदारी अपने पास रखना चाहती थी लेकिन अब सरकार इसे पूरी तरह बेचने की घोषणा कर चुकी है। इसके बावजूद कोई ग्राहक नजदीक नहीं आ रहा है। इस कम्पनी पर लगभग 58 हजार करोड़ रुपये का कर्ज है। इस मामले में सरकार की हताशा इसी बात से जाहिर हो जाती है कि पिछले साल नवम्बर में नागर विमानन मंत्री हरदीप सिंह पुरी ने राज्यसभा में यह बयान देकर हंगामा मचा दिया था कि अगर एयर इण्डिया का निजीकरण नहीं हो पाया, तो उसे बन्द कर देना पड़ेगा। विमानन उद्योग के कर्मचारी गिल्ड ने प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर उनके इस बयान को अत्यधिक नुकसानदेह बताया। इस साल की जनवरी के तीसरे हफ्ते केन्द्रीय मंत्री पीयूष गोयल ने कहा कि अगर वह मंत्री नहीं होते तो एयर इण्डिया के लिए बोली जरूर लगाते। उन्होंने इस कम्पनी को सोने की खान बताया। लेकिन उसके बाद भी निवेशक मेहरबान होते नहीं दिख रहे हैं।

कम्पनियों को बेचने के लिए क्या प्रक्रिया अपनायी जा रही है?

सरकार के अनुसार कम्पनियों की हिस्सेदारी एक साथ नहीं बेची जायेगी बल्कि अलग-अलग किस्तों में बेचने की योजना है। सरकार का तात्कालिक उद्देश्य यह है कि विनिवेश के जरिये 1.05 लाख करोड़ रुपये जुटाये जायें। सरकार ने 2019-20 की पहली तिमाही में 2357.10 करोड़ रुपये जुटाये हैं। सरकार को चालू वित्त वर्ष में विनिवेश से अब तक 12995.46 लाख करोड़ रुपये प्राप्त हुए हैं, जिसमें आईआरसीटीसी के आईपीओ के 637.97 करोड़ रुपये भी शामिल हैं।

कम्पनियों की हिस्सेदारी 51 प्रतिशत से कम करने के लिए सरकार कम्पनी कानून 241 में संशोधन करने की बात कर रही है। इससे इनकी विनिवेश की सीमा को बढ़ाने का रास्ता आसान हो जायेगा। सरकार का प्राथमिक उद्देश्य 3-4 साल में निजीकरण को और तेजी से बढ़ावा देना है। यह भी कहा गया है कि जो कम्पनी बेचने योग्य नहीं है उसे भी बेचने का प्रयास किया जायेगा।

किस क्षेत्र की कम्पनियों को प्राथमिकता के तौर पर बेचे जाने की योजना है।

प्राथमिकता के तौर पर सरकार ईंधन से सम्बन्धित कारोबार करने वाली कम्पनियों को बेचने की योजना बना रही है, जिसके

अन्तर्गत पेट्रोलियम ईंधन का खुदरा कारोबार करने वाली देश की दूसरी सबसे बड़ी कम्पनी भारत पेट्रोलियम कॉरपोरेशन लिमिटेड (बीपीसीएल) है। वह बीपीसीएल को देशी-विदेशी कम्पनियों के हाथों बेचने का विचार बना रही है। अगर ऐसा करने में सरकार कामयाब होती है, एक बहुमूल्य कम्पनी देश की झोली से बाहर चली जायेगी। बाजपेयी सरकार के समय भी एचपीसीएएल में सरकार की अपनी 51.1 प्रतिशत हिस्सेदारी में से 34.1 प्रतिशत हिस्सा बेचने की तैयारी थी, लेकिन सरकार सफल नहीं हो पायी थी।

हाल ही में केन्द्रीय मंत्रिमण्डल ने नीलांचल इस्पात लिमिटेड में एचएमटीसी सहित छः सार्वजनिक उपक्रमों की हिस्सेदारी बेचने को हरी झण्डी दिखा दी है। एचएमटीसी में 49 प्रतिशत, ओड़ीशा माइनिंग कॉरपोरेशन में 20 प्रतिशत, ओड़ीसा इन्वेस्टमेण्ट कॉरपोरेशन में 12 प्रतिशत, एनएमडीसी में 10 प्रतिशत हिस्सेदारी बेचने का फैसला किया गया है। इन सब को अंजाम देने के लिए केबिनेट ने अध्यादेश को मंजूरी दी है।

इनडाइरेक्ट होल्डिंग एक बहाना है

संसद और आम जनता के बीच विरोध से बचने के लिए सरकार कहती है कि सार्वजनिक कम्पनियों में डाइरेक्ट होल्डिंग कम करके इनडाइरेक्ट होल्डिंग बढ़ाएगी। लेकिन यह एक बहाना है। सबसे पहले, डाइरेक्ट और इनडाइरेक्ट होल्डिंग का एक मामला देखते हैं। इण्डियन ऑयल कॉरपोरेशन लिमिटेड (आईओसीएल) में सरकार की सीधे (डाइरेक्ट होल्डिंग) 51.5 प्रतिशत हिस्सेदारी है। इसके अलावा इस कम्पनी में एलआईसी की हिस्सेदारी 6.5 प्रतिशत है, जो पूरी तरह सरकारी कम्पनी है। इसका मतलब आईओसीएल में सरकार की 6.5 प्रतिशत इनडाइरेक्ट होल्डिंग है। सरकार कह रही है कि वह कम्पनियों में इनडाइरेक्ट होल्डिंग बढ़ाएगी। अपने एक विभाग से पैसा निकालकर दूसरे विभाग में लगाने से घाटे में चल रहे विभाग को राहत तो मिल सकती है, लेकिन इससे सरकार के कुल घाटे में रत्ती भर भी फर्क नहीं पड़ेगा और न ही घाटे में चल रही कम्पनी में कोई सुधार होगा। यह बात सरकार जानती है। इसलिए इनडाइरेक्ट होल्डिंग की आड़ में वह सार्वजनिक कम्पनियों को निजी हाथों में बेचने की पूरी तैयारी कर चुकी है।

कम्पनियों को बेचने के पीछे सरकार की क्या मंशा है?

सरकार की कारगुजारियों से स्पष्ट हो जाता है कि उसका मकसद निजीकरण को बढ़ावा देना है। जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी वह सार्वजनिक उपक्रमों को निजी कम्पनियों के हाथों में देने का काम मुस्तैदी से कर रही है। सरकार का बार-बार यही रोना है कि पीएसयू से सम्बन्धित उपक्रम घाटे में चल रहे हैं, जिसके लिए सरकार को काफी नुकसान उठाना पड़ रहा है। लेकिन न केवल घाटेवाली, बल्कि भरपूर मुनाफा देनेवाली नवरत्न कम्पनियों को बेचने की तैयारी चल रही है। स्पष्ट है कि सरकार अपनी असफलता को छुपाने के लिए लगातार नुकसान होने का हवाला देती रहती है। हम जानते हैं कि इन सार्वजनिक कम्पनियों को स्थापित करने के लिए देश की बहुसंख्यक जनता का कितना खून-पसीना लगा है। जनता की कमाई से स्थापित इन कम्पनियों को कौड़ियों के दाम बेचते हुए सरकार को जरा भी शर्म नहीं आ रही।

सरकार ने देशी-विदेशी पूँजीपतियों के साथ मिलकर देश को फिर से तंगहाली में पहुँचा दिया है। सरकारी घाटा बढ़ते हुए आसमान छू रहा है। यहाँ तक कि सरकारी खर्च चलाने के लिए पैसे नहीं हैं। यह सब सरकारी खजाने की लूट के चलते हुआ है, लेकिन सरकार उस पर लगाम लगाने और इस समस्या का समाधान करने के बजाय सार्वजनिक कम्पनियों को बेचने (निजीकरण) पर ही आमादा है, जबकि इसके जरिये वह निजी पूँजीपतियों को फायदा पहुँचाने का काम कर रही है। इस तरह देश की सम्पदा को कौड़ियों के मोल कुछ मुट्ठी भर लोगों को बेच देना चाहती है। इसके चलते इनमें काम करने वाले कर्मचारियों की रोजगार सुरक्षा खतरे में है। वे स्वाभिमान की जिन्दगी छोड़कर उसी तरह पूँजीपतियों के गुलाम बन जायेंगे, जैसा कि निजी संस्थाओं और कम्पनियों के कामगारों के साथ पहले से ही हो रहा है। यह आर्थिक गुलामी ही आज के दौर की नयी गुलामी है। पुरानी गुलामी से फर्क बस इतना है कि तब गोरे विदेशी पूँजीपति राज करते थे और अब देशी-विदेशी पूँजीपति मिलकर राज कर रहे हैं।

सरकार के इन कारनामों से स्पष्ट हो जाता है कि सरकार देश की अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने की दिशा में कार्य नहीं कर रही है, बल्कि चन्द ऊँचे घरानों के लिए काम कर रही है। सरकारी कम्पनियों का निजीकरण जितनी तेजी से बढ़ रहा है उतनी तेजी से देश में बेरोजगारी की समस्या भी बढ़ रही है। एक तरफ अस्थायी रोजगार की समस्या से लोग जूझ रहे हैं, वहीं सरकारी कम्पनियों की बिक्री से स्थायी रोजगार वाले थोड़े से मेहनतकश लोगों पर भी खतरा मण्डरा रहा है।

1991 से उदारीकरण की नीतियों के चलते सार्वजनिक कम्पनियों को बेचने का सिलसिला शुरू हो गया था। बाद में बाजपेयी सरकार ने सार्वजनिक कम्पनियों को बेचने के लिए 'विनिवेश विभाग' बना दिया था, जिसका असली अर्थ है– सार्वजनिक कम्पनियों की नीलामी का विभाग। 2016 में लोगों के विरोध के चलते मोदी सरकार ने इस विभाग का नाम बदलकर निवेश और सार्वजनिक सम्पत्ति प्रबन्धन विभाग या 'डिपम' कर दिया। लेकिन इसका भी काम वही है, यानी सार्वजनिक कम्पनियों को बेचने वाला विभाग। अजीब बात है कि सरकार हर बात पर पिछले 70 सालों में कुछ नहीं हुआ या सब गलत हुआ का राग अलापती है। सवाल यह है कि आजादी के बाद 73 सालों में खड़ी की गयी इन सार्वजनिक सम्पत्तियों की नीलामी करके सरकार कब तक अपने घाटे की पूर्ति करती रहेगी?

साहित्य

अकबर इलाहाबादी : जो अक्ल को न बढ़ाये वो शायरी क्या है

(जन्म 16 नवम्बर 1846 - निधन 15 फरवरी 1921)

-- विजय गुप्त

इलाहाबाद का जिक्र हो और इलाहाबादी अमरूद और अकबर इलाहाबादी याद न आयें, यह सम्भव ही नहीं। इलाहाबाद, अमरूद और अपने बारे में कमाल की गर्वोक्ति की है अकबर इलाहाबादी ने,

कुछ इलाहाबाद में सामाँ नहीं बहबूद[1] के
याँ धरा क्या है बजुज[2] 'अकबर' के और अमरूद के

(1. भलाई 2. सिवाय)

अमरूद और अकबर जैसे एक दूसरे के पर्यायवाची हैं। बनावट में भी और स्वाद में भी। अमरूद की सारी सिफत अकबर की शायरी में मौजूद है। कठोरता और कोमलता, चिकनाई और खुरदुरापन, मिठास और खटास, सरसता और तिक्तता। जैसे-- अमरूद कई विरोधी स्वादों का खजाना है, वैसे ही अकबर की शायरी कई विपरीत गुण-धर्मों का जखीरा है। वहाँ जिन्दगी है तो मौत की सर्द आहट भी है। सुन्दरता है तो कुरूपता भी है। अच्छाई और बुराई के बीच एक मुसलसल लड़ाई भी है। नेकी है तो बदकारी भी है। हँसी है तो आँसू भी है। आनन्द है तो दर्द का अहसास भी है।

क्या हुआ शम-ए-हरम तूने बुझा दी ऐ दोस्त
दैर[1] के शोला जबानों ने तुझे दाद तो दी

(1. मन्दिर, बुतखाना)

अकबर अँधेरे और उजाले के फर्क को समझते हैं और समझाते भी हैं। वह ताकीद करते हैं कि बिना कार्य-कारण के कुछ भी घटित नहीं होता। धुआँ है तो आग भी होगी और आग लगती ही नहीं, लगायी भी जाती है। पानी प्यास बुझाता है तो सैलाब डुबोता भी है। बिजली चमकती है तो गिरती भी है। वह अरमानों, ख्वाबों और इरादों को चमकाती है तो उन्हें तबाह और खाक भी करती है। हवा जान बख्शती है तो आँधी जान भी लेती है। कुदरत और जिन्दगी के अपने नियम और कायदे होते हैं। इन नियमों और कायदों को समझने-बूझने के लिए 'क्या' और 'क्यों' के चक्रव्यूह से गुजरना ही होता है।

इसी सोच में तो रहता हूँ 'अकबर'
यह क्या हो रहा है यह क्यों हो रहा है

'क्या' और 'क्यों' की जाँच-पड़ताल ने ही अकबर को धर्म और राजनीति के नापाक गठजोड़ का प्रपंच और शैतानी खेल दिखाया था। उन्होंने अपने दौर में अंग्रेजों के खेल को समझ लिया था। उन्होंने साफ-साफ देख लिया था कि अंग्रेजी शतरंज के दो मोहरे हैं, हिन्दू और मुसलमान। इन्हें आपस में उलझा कर, लड़ा कर ही अपना उल्लू सीधा किया जा सकता है। भाषा के नाम पर, रीति-रिवाजों के नाम पर, मन्दिर-मस्जिद के नाम पर, पहरावे के नाम पर, धार्मिक आजादी के नाम पर अंग्रेजों ने दोनों कौमों को खूब लड़ाया, उनके बीच मनमुटाव पैदा किया, जमाने से चले आ रहे भाईचारे और मुहब्बत को तोड़ा और हिन्दुस्तान पर राज किया। विडम्बना देखिये कि इक्कीसवीं सदी के आजाद हिन्दुस्तान में अंग्रेजों के उसी खूनी खेल को दोहराने की कोशिश की जा रही है। धर्मनिरपेक्ष भारतीय ढाँचे को छिन्न-भिन्न किया जा रहा है। बहुजातीय, बहुभाषीय और बहुरंगी भारत को एकरंगी, एकरस और एकजातीय बनाने का षड्यंत्र रचा जा रहा है। हाल ही में संसद द्वारा पास किये गये 'नागरिकता संशोधन कानून' (सीएए) ने पूरे देश में डर और भ्रम का माहौल पैदा कर दिया है। मुसलमानों और गैर हिन्दुओं को देशद्रोही कहा जा रहा है। सरकार से सवाल पूछने वालों को 'अरबन नक्सल', 'माओवादी', 'कम्युनिस्ट' और 'गद्दार' कहा जा रहा है। इस विभाजनकारी एवं द्विराष्ट्रवादी सिद्धान्त का समर्थन करनेवाले कानून के विरोध में आम आदमी सड़कों पर उतर आया है। नागरिकों के अहिंसक विरोध को पुलिस द्वारा हिंसक तरीके से कुचला जा रहा है। अब तक कई निर्दोष मारे जा चुके हैं। जेएनयू, जामिया मिलिया और अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों को पुलिस ने बेरहमी से मारा-पीटा है। उनके समर्थन में देश की पूरी छात्र बिरादरी उठ खड़ी हुई है। कई राज्यों की सरकारों ने घोषणा कर दी है कि वो किसी भी सूरत में 'सीएए' लागू नहीं करेंगे।

अकबर इलाहाबादी ने उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में ही हिन्दू और मुसलमान के राजनीतिक फायदे और उपयोग की घिनौनी और जानलेवा चालों और फन्दों को भाँप लिया था और दोनों जातियों को सचेत किया था कि वो राजनीतिक शतरंज की किन्हीं भी चालों

के मोहरे ना बने। अकबर की दुरन्देशी और चेतावनी देखिये, गुनिये और उसी की रोशनी में आज के हिन्दुस्तान के हालात को समझिए--

मुस्लिम का मियाँपन सोख्त[1] करो, हिन्दू की भी ठकुराई न रहे!
बन जाओ हर इक के बाप यहाँ दावे को कोई भाई न रहे!
(1. नष्ट)

अकबर यहीं नहीं रुकते वह दुश्मन की हर चाल, हर फरेब को समझने और उसकी मुखालिफत करने के लिए खुद आगे बढ़कर कार्रवाई करने को कहते हैं--

जिस बात को मुफीद समझते हो खुद करो
औरों पे उसका बार[1] न इसरार[2] से धरो
हालात मुख्तलिफ हैं, जरा सोच लो यह बात
दुश्मन तो चाहते हैं कि आपस में लड़ मरो!
(1. भार, बोझ 2. हठ, जिद)

अकबर इलाहाबादी ने अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' यानी डिवाइड एण्ड रूल पॉलिसी का हमेशा विरोध किया। वह गाँधी के बहाने अंग्रेजों पर तंज करते हैं और मजाहिया अन्दाज में यह सिखा भी देते हैं कि हिन्दू और मुस्लिम भाईचारे का असली दुश्मन कौन है और किसको किससे लड़ना चाहिए।

पूछता हूँ "आप गाँधी को पकड़ते क्यों नहीं"?
कहते हैं "आपस ही में तुम लोग लड़ते क्यों नहीं"?

आपस की लड़ाई मनभेद, बन्दरबाँट और आपसी फूट के कारण होती है और हमेशा इस फूट और टूटे हुए भरोसे का फायदा कोई तीसरा ही उठाता है। हिन्दुस्तान में हिन्दू और मुस्लिम के बीच की लड़ाई जानबूझ कर पैदा की गयी है। उनके साँझे चूल्हे की आग को अलग-अलग रसोई में बाँट दिया गया है। विडम्बना और मजा देखिए, इस बँटवारे का फल न हिन्दू को मिला और न मुसलमान को, बल्कि यह फल मिला तीसरे को, जिसने दोनों चूल्हों की आग को बाँटा था, यानी अंग्रेज को। इस सन्दर्भ में पंचतंत्र की एक मजेदार कहानी 'दो बिल्लियाँ और एक बन्दर' की याद आती है। दो बिल्लियाँ थीं। दाँत काटी रोटी की तरह दोनों की दोस्ती थी। एक दिन दोनों को कस कर भूख लगी। एक बिल्ली को एक रोटी मिली। वह खाने लगी। दूसरी ने कहा कि, 'तुम मुझे भूल गयी?' पहली ने रोटी का एक टुकड़ा दूसरी को दिया। दूसरी ने कहा कि, 'यह टुकड़ा तो छोटा है। यह बेईमानी है।' बात बढ़ती चली गयी। बहस-मुबाहिसों से निकल कर बात झगड़े और मारपीट तक पहुँच गयी। जंगल के आस-पास के लोग इकट्ठे हो गये। सब हैरान थे कि पक्के दोस्तों के बीच यह कैसा विवाद? तभी एक बन्दर आया। उसने कहा कि, 'मेरे पास एक तराजू है। मैं रोटी को तौलकर उसके दो बराबर टुकड़े कर के बाँट देता हूँ।' बिल्लियाँ राजी हो गयीं। खेल अब शुरू हुआ। बन्दर ने देखा कि रोटी के दो असमान टुकड़े हैं। एक बड़ा और दूसरा छोटा। जाहिर है कि तराजू के दोनों पलड़ों को बराबर होना ही नहीं था। पलड़ों को बराबर करने के लिए बन्दर ने रोटी के बड़े टुकड़े का कुछ हिस्सा नोचकर खा लिया। रोटी के दो असमान टुकड़ों का खेल तब तक चलता रहा, जब तक पूरी रोटी बन्दर के पेट में नहीं चली गयी।

बन्दर का यह खेल हिन्दुस्तान में आज भी चल रहा है। तराजू पर हिन्दू और मुसलमान दोनों की रोटियाँ हैं लेकिन दोनों पलड़ों को बराबर नहीं होने दिया जा रहा है। रोटी न तो हिन्दू तक पहुँच रही है और न मुसलमान तक। रोटी हाथ से निकलती चली जा रही है और सरकार बहादुर कहती है कि धीरज धरो, सत्तर साल में जो नहीं हुआ वह अब हो रहा है। अच्छे दिन आ रहे हैं। विकास दिन दूना और रात चौगुना हो रहा है। रोटी की क्या बात है, 2024 तक तो हम तुम्हें केक खिलाएँगे। बन्दरबाँट न्याय के मंसूबों और असर पर अकबर इलाहाबादी लिखते भी हैं--

थे केक की फिक्र में सो रोटी भी गयी
चाही थी शय बड़ी सी छोटी भी गयी
वाइज[1] की नसीहतें न मानी आखिर
पतलून की ताक में लंगोटी भी गयी
(1. उपदेशक)

रोटी, पतलून और लंगोटी के जाने के बाद भी राजनीति के सबसे बड़े साहिब और उनके चेले-चपाटी जोर-शोर से फाइव ट्रिलियन इकॉनॉमी की बात करते हैं। फाइव ट्रिलियन इकॉनॉमी हम जैसे भूखों-नंगों से थोड़े ना आयेगी, वह तो आयेगी सोने-चाँदी में दिन-रात खेलते पूँजीपतियों से। अंग्रेज भी इन्हीं पूँजीपतियों की सुनते थे, और मोदी सरकार भी इन्हीं पूँजीपतियों की सुनती है, क्योंकि चुनावी चन्दा तो इन्हीं से मिलता है ना! अपने जमाने के हालात से बाखबर अकबर खबरदार भी करते हैं,

कहते हैं हम को जो चन्दा दे मुहज्जब[1] है वही
उसके अफ्आल[2] से मतलब है न आदात[3] से काम
(1. सभ्य 2. कर्मों 3. आदत)

धनी-मानी, अमीर-उमरा जो चाहें करें, चोरी करें, डकैती डालें, कत्ल करें, करवाएँ, लूटे-मारें, कूटे-खाएँ, सब चलेगा। सत्ता इनकी, अदालत इनकी, और तो और पुलिस महकमा भी इनका। सत्ता और पुलिसिया जुल्म की मारा-मारी तो हाल ही में जामिया मिलिया, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और जेएनयू के बेकुसूर छात्र-छात्राओं तथा उत्तर प्रदेश की जनता ने देखी और झेली है। खून से लथपथ विद्यार्थियों की तस्वीरें बेचैन करती हैं और जनविरोधी सरकार का जालिम चेहरा भी दिखाती हैं। यह वहशी चेहरा खूँखार अंग्रेजों की याद दिलाता है। सिर उठाने को जुर्रअत समझता है और लब खोलने का जुर्म करार देता है। सिर उठाओ मत, सिर

झुकाये रहो, बोलो मत, सिर्फ सुनो। अपने मन की नहीं, सिर्फ मेरे 'मन की बात' सुनो। दूर से आती हुई अकबर इलाहाबादी की आवाज सुनाई देती है,

फिर उठी है आपकी तेगे सितम
मुझ में क्या बाकी अभी कुछ जान है
हुक्मे खामोशी है और मेरी जबान
आपकी बातें हैं मेरा कान है

इनसान का सिर्फ कान में तब्दील हो जाना, जानवर हो जाना है। जैसे मदारी के डर से बन्दर नाचता है, शेर सर्कस में करतब दिखाता है; वैसे ही डरा हुआ इनसान सिर्फ आका की हाँ में हाँ मिलाता है। वह इनसानी फितरत से दूर चला जाता है और हुक्म का गुलाम हो जाता है। डर इनसान को इनसानियत से महरूम कर देता है। उसे इनसानियत के दर्जे से नीचे गिरा देता है। केवल कान में बदल गये डरे हुए लोगों पर अकबर गहरा व्यंग्य करते हैं,

आबरू चाहो अगर तो अंग्रेज से डरते रहो
नाक रखते हो तो तेगे-तेज[1] से डरते रहो
(1. धारदार तलवार)

अकबर शायरी को केवल मनबहलाव का साधन नहीं मानते थे। दिल बहल जाये, अच्छा है लेकिन ध्यान रहे कि दिमाग पर परदा न पड़े। दिमाग चाक-चौबन्द और रोशनखयाल हो। वह लिखते भी हैं कि,

वो इश्क क्या जो न हो हादी-ए-तरीके कमाल
जो अक्ल को न बढ़ाये वो शाइरी क्या है

वह इश्क, इश्क नहीं जो अंधकार से प्रकाश की ओर न ले जाये, आगे का रास्ता न दिखाए, और वह शायरी, शायरी नहीं जो अक्ल को सच की आग और तपिश से न भर दे। अकबर इलाहाबादी की कविता राग-रंग के साथ आग और ताप की भी कविता है। तंजिया और मजाहिया बोलों के साथ वह संजीदा और मानीखेज गूँज की भी कविता है। वह रास्ता दिखाने वाले युग-प्रवर्तक कवि हैं। शम्सुर्रहमान फारूकी साहब ने बिल्कुल ठीक लिखा है कि, "इसमें कोई शक नहीं कि अकबर इलाहाबादी के अपने अहद में, बल्कि उनकी मौत के कई बरस बाद तक भी उनकी कद्रो मजिलत बहुत हुई। जमाने ने उन्हें 'लिसानुल अस्र' (युग-प्रवक्ता) का खिताब दिया।" (दीबाचए अव्वल : अकबर इलाहाबादी, बाज बुनियादी बातें, शम्सुर्रहमान फारूकी, 'कुल्लियात-ए-अकबर', सम्पादक : अहमद महफूज, जिल्द अव्वल 1 (गजलियात), कौमी काउन्सिल बराए फरोग-ए उर्दू जबान, नयी दिल्ली, पृष्ठ 17)। उनकी लोकप्रियता का आलम यह है कि आज भी उनके अशआर काव्य रसिकों की जबान पर रखे हुए हैं, दोहों और चौपाइयों की तरह, मुहावरों और सूक्तियों की तरह। कुछ उदाहरण देखिए,

हमें भगवान की कृपा ने तो बाबू बनाया है
मगर योरप के शाला लोग ने उल्लू बनाया है

*

मय भी होटल में पियो चन्दा भी दो मस्जिद में
शेख भी खुश रहें शैतान भी बेजार न हो

*

चार दिन की जिन्दगी है, कोफ्त से क्या फायदा
खा डबलरोटी, क्लर्की कर, खुशी से फूल जा

*

हुए इस कदर मुहज्जब, कभी घर का मुँह न देखा
कटी उम्र होटलों में, मरे अस्पताल जाकर

*

हम क्या कहें अहबाब क्या कार-ए-नुमाया कर गये
बीए किए, नौकर हुए, पेंशन मिली फिर मर गये

*

हम आह भी भरते हैं तो हो जाते हैं बदनाम
वो कत्ल भी करते हैं तो चर्चा नहीं होता

*

कौम के गम में डिनर खाते हैं हुक्काम के साथ
रंज लीडर को बहुत है मगर आराम के साथ

*

क्या गनीमत नहीं ये आजादी
साँस लेते हैं, बात करते हैं

अकबर इलाहाबादी ने उर्दू शायरी के रंग-ढंग और ढब को ही बदल डाला। उन्होंने अपने जमाने की सारी बदकारियाँ देखी थीं। राजनीति और धर्म के धुरन्धरों का पूरा खेल-तमाशा देखा था। मक्कार समाजसुधारकों और नकली क्रान्तिवीरों की पूरी नौटंकी देखी थी। आम जनता को मूर्ख बनाने और उन्हें बुरी तरह ठगने और लूटने का गुणा-भाग देखा था। अपराध, जुल्म और कत्लोगारत का अँधेरा देखा था। देश की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक गैरबराबरी, ऊँच-नीच के फलसफे, अंग्रेजों के अत्याचारों और अमीरी-गरीबी के बीच लगातार बढ़ते फासलों ने अकबर को दुःख, घृणा, बेचैनी और गुस्से से भर दिया था। वह स्वयं अदालत में सेसन जज थे। अपने इजलास में उन्होंने समाज और इनसान की पूरी नंगी सच्चाई देखी थी। जो देख सकता है, दिल से महसूस कर सकता है, वही रच सकता है। संस्कृत में कवि को 'द्रष्टा' और 'स्रष्टा' कहा गया है। अकबर इलाहाबादी द्रष्टा और स्रष्टा दोनों थे। उन्होंने अपनी आँखों से दीन-दुनिया देखी थी और अपनी कविता रची थी। इसीलिए उनकी कविता सीधे दिल और दिमाग

पर चोट करती है। उनके खट्टे-मीठे, कड़वे-कसैले-विषैले और असह्य दुःख-दर्द भरे अनुभवों ने यह सिखा दिया था कि यह जंग लगा, जहर भरा समाज सहलाने और फुसलाने से नहीं बदल सकता। इसे आमूल-चूल बदलने के लिए एक भयंकर आघात और निर्णायक चोट की जरूरत है, और यह चोट सोनार की नहीं लोहार की होनी चाहिए। यही कारण है कि अकबर ने अपनी शायरी में तंज के जहर बुझे तीर चलाये, मखौल के तलवार चमकाये और तल्ख व्यंग्य की कटार से समाज के दिखावटी और रेशमी लिबास को चीर कर रख दिया। उनकी हँसी के पीछे आँसू की चमक भी थी। उनके कटाक्ष तिलमिला देते हैं, लेकिन आँखें भी खोल देते हैं। अज्ञान और पराधीनता के अंधेरे से बाहर निकलने का रास्ता भी दिखा देते हैं। यह अकबर साहब ही लिख सकते हैं कि,

क्यों कोई आज हरि का नाम जपे
क्यों रियाजत[1] का जेठ सर पर तपे
काम वह है जो हो गवरमेन्टी
नाम वह है तो पानियर में छपे
(1. मेहनत, तपस्या)

मेहनत-मशक्कत, साधना और तपस्या करने वालों का हाल कल भी बेहाल था, और आज भी बदहाल है। अपना सर्वस्व निछावर करने वाले अनमोल लोगों का कोई मोल बाजार में नहीं था। बाजार भाव तो उनका था जो तीन-तिकड़म करके, ले-दे के सरकारी नौकर हो जाये या ऐसा नामवर हो जो बिना कुछ किये धरे लाइमलाइट में आ जाये और अखबारों में नाम और फोटो छप जाये। आज तो हालत बद से बद्तर हो गयी है। पतन की इन्तहा हो गयी है। जो नैतिक रूप से जितना नीचे गिर रहा है, वह उतने ही ऊँचे सिंहासन पर बैठ रहा है। वह बिल्कुल ढोल की तरह पोला है, लेकिन खूब बेसुरा बज रहा है। अकबर फरमाते हैं कि,

मिलाएँ किस तरह सुर, सद्र पर नज्ला है मजहब का
बहुत ऊँचे सुरों में बज रही है अब तो गत उनकी

अखबार ऐसे ही पतित और नराधम लोगों के सुर में सुर मिला रहे हैं, उनकी राग-रागिनियाँ गा रहे हैं। उनके फोटो छाप रहे हैं। उनके चरणों में बिछे जा रहे हैं। कभी अकबर साहब ने अखबारों के लिए क्या खूब लिखा था कि,

खींचो न कमानों को न तलवार निकालो
जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो

आज तो ये अखबार तोप के मुँह में पूरे के पूरे समा गये हैं। इनकी तलवारें काठ की तलवारों में बदल गयी हैं। खूब याराना हो गया है। 'लीडर' और 'एडीटर' के 'ब्रदरशिप' पर अकबर इलाहाबादी ने चमरौंधा भिगो कर मारा है,

चोर के भाई गिरह-कट तो सुना करते थे
अब यह सुनते हैं एडीटर के ब्रादर लीडर

लीडर और एडीटर के इस भाईचारे ने, चोर और गिरहकट की जुगलबन्दी ने, प्रिण्ट-इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और पालिटिक्स के नापाक गठबन्धन ने चोरों, डकैतों, हत्यारों और सौदागरों के खून सने हाथों में हिन्दुस्तान की बागडोर सौंप दी है। इसीलिए तो तालिब-ए-इल्म पर जुल्म ढाये जा रहे हैं। चाहे जामिया मीलिया हो, एएमयू हो, जेएनयू हो हर जगह छात्र-छात्राओं पर वहशियाना हमले किये जा रहे हैं। देश के तमाम अखबार और टेलीविजन के परदे लहूलुहान विद्यार्थियों की तस्वीरों से रंगे पड़े हैं; और विडम्बना देखिये कि जो शिकार हैं, उन्हीं पर एफआईआर हैं, मुकदमे हैं, वे ही जेलों में बन्द हैं और शिकारी मासूम बनकर छाती पीट रहा है कि 'हाय! हाय! मुझ पर जुल्म हुआ है, मैं खतरे में हूँ, मेरा धर्म खतरे में है, देश खतरे में है!' अकबर साहब ने यह सारी साँठ-गाँठ समझ ली थी। सत्ता और सरमाया (पूँजी) की मिलीभगत बूझ ली थी। उन्होंने लिखा कि,

जिधर साहब उधर दौलत जिधर दौलत उधर चन्दा
जिधर चन्दा उधर ऑनर जिधर ऑनर उधर बन्दा

चन्दा, बन्दा, दौलत, साहब और ऑनर सब के तार 'धन्धे' से यानी 'बिजनेस' से जुड़े हुए हैं। धन्धा यानी रुपइया। धन्धे का एक ही उसूल है कि झूठ बोलो, अफवाह फैलाओ, माल बेचने के लिए हर हिकमत का इस्तेमाल करो। जरूरत पड़े तो धर्म, ईमान, नैतिकता तो क्या देश को भी दाँव पर लगा दो पर हर हाल में पैसे बनाओ। जर, जमीन, जोरू सबका सौदा करो। भाव-भावनाएँ, दिल-दिमाग सब बेच दो। प्यार, मोहब्बत, नीति, न्याय, भरोसा सब को हिसाब-किताब, क्रेडिट-डेबिट की काली बही में दफ्न कर दो। मार्क्स-एंगेल्स ने 'कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणापत्र' में लिखा है कि "पूजीपति वर्ग ने 'नकद पैसे-कौड़ी' के हृदयशून्य व्यवहार के सिवा मनुष्यों के बीच और कोई दूसरा सम्बन्ध बाकी नहीं रहने दिया।" अकबर साहब भी यही बात कहते हैं,

हमारे झगड़ों की कुछ न पूछो तमाम दुनिया है और हम हैं
कि जेब में जर है घर में जन है खिराज पर कुछ जमीन भी है

जर, जोरू और जमीन के बीच अब ममता और हृदय नहीं है, वहाँ तो लेन-देन और हृदयहीन सौदा है।

अंग्रेज सौदागर बन कर ही तो आये थे। उन्होंने ही सारे फसाद खड़े किये। हिन्दू, मुसलमान का झगड़ा खड़ा किया। मजहबी मसलों को तूल दी। हिन्दी-उर्दू का बहनापा तोड़ा। भाषाओं के राजमहल में देशी रानियों को दासी बनाकर अंग्रेजी को पटरानी बना दिया। धर्मों के बीच भ्रम और भेदभाव का जाल बिछाया और बहुधर्मी और बहुभाषी हिन्दुस्तान को हिन्दू और मुस्लिम देश में तकसीम करने का अमानवीय खेल खेला। वे सफल भी हुए। दुर्भाग्य और इतिहास का व्यंग्य देखिये कि आज की हवा

में भी 'जय श्रीराम' और 'इस्लाम' के जलते हुए नारे जिन्दा इनसानों को जला रहे हैं। राख कर रहे हैं। अकबर इलाहाबादी ने उस समय आने वाली नस्लों को सचेत किया था कि,

यह बात गलत कि मुल्के इस्लाम है हिन्द
यह झूठ कि मुल्के लच्छमन-ओ-राम है हिन्द
हम सब हैं मुती-ओ-खैर ख्वाहे इंगलिश[1]
योरप के लिए बस एक गोदाम है हिन्द
(1. अंग्रेजों के शुभचिन्तक और ताबेदार)

योरप के साथ-साथ हिन्दुस्तानी पूँजीपतियों और उनके कंधों पर बैठे सत्ताधारियों के लिए आज भी हिन्दुस्तान टकसाल और गोदाम बना हुआ है। सत्ता और पूँजी ने मिलकर धर्मनिरपेक्ष मूल्यों को तबाह कर दिया और एक शान्तिप्रिय और न्यायपसन्द देश को अराजक जंगल में बदल दिया। बहुत रंज और तंज से अकबर इलाहाबादी ने लिखा कि,

मार-ओ-कजदुम[1] रह गये, कीड़े-मकोड़े रह गये
सूरतें तो हैं मगर इनसान थोड़े रह गये
(1. साँप-बिच्छू)

रंज और तंज अकबर इलाहाबादी को गम्भीर और बड़ा शायर बनाते हैं। व्यंग्य और वक्रोक्ति यानी पेंचदार ढंग से बात कहने की जादुई कला उनकी शायरी के नोकदार और धारदार हथियार हैं। उनकी तंजिया और मजाहिया शायरी हँसी में उड़ाने की बात नहीं है। वह हँसाने के साथ आपको बेचैन और परेशान भी करती है। आप मुस्कुराते हुए खिसियाते और खीजते भी हैं। वह सतह पर ही नहीं रहते बल्कि मसले की तह में जाकर अन्दरूनी सच को सामने लाते हैं और आपको बराबर चाक-चौबन्द और सावधान करते रहते हैं। शायरी अकबर के लिए आसान नहीं, बेहद संजीदा काम है क्योंकि वह सच के रास्ते पर चलने वाले और झूठ को बेपर्दा करने वाले जागरूक शायर हैं। अपने कवि कर्म के बारे में उन्होंने लिखा है कि,

शाइरी मेरे लिए आसाँ नहीं
झूठ से वल्लाह नफरत है मुझे

वह झूठ से नफरत करने वाले सच के अन्वेषी और जाग्रत कवि हैं।

जागने और जगाने का काम उत्कृष्ट कवि ही कर सकता है और निःसन्देह अकबर इलाहाबादी ऊँचे दर्जे के महान कवि हैं। उनके यहाँ विषय-वस्तु की भरमार है और उन्हें काव्यात्मक अर्थ देने में वह कमाल की कारीगरी करते हैं। यानी वस्तु और शिल्प दोनों के वह उस्ताद हैं। भाषा के तो वह जादूगर हैं। उन्होंने उर्दू शायरी को बिल्कुल नयी, नुकीली और चमकीली भाषा दी है। उर्दू के साथ उन्होंने अरबी, फारसी, हिन्दी और अंग्रेजी शब्दों का रचनात्मक और जीवन्त प्रयोग किया है। शमीम हनफी साहब ने बिल्कुल ठीक लिखा है कि, "'अकबर' की कविता को परखने के लिए केवल साहित्य की कसौटी काफी नहीं है। मानसिक, वैचारिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक स्तरों पर बहुत सी दिशाएँ 'अकबर' की कविता से जुड़ी हुई हैं।" (अकबर इलाहाबादी की शायरी, सम्पादक : शमीम हनफी, लोकप्रिय शायर अकबर इलाहाबादी, रूपान्तरण : सबा, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ 8)।

अकबर इलाहाबादी का सबसे बड़ा शाहकार उनका 'गाँधीनामा' है। वह गाँधी के शैदाई हैं। वह गाँधी के सबसे बड़े प्रेमी हैं। वह उन्हें मुल्क का बादशाह मानते हैं। वह आज के उन सत्ताधारी गाँधीवादियों में नहीं हैं जो 'मुँह में राम, बगल में छुरी' रखते हैं। वह तो दिलों पर राज करने वाले गाँधी की जय बोलते हैं, उन्हें 'पेशवाए-मुल्क' कहते हैं।

फकत जिद है जो कहते है कि "जब अपनी जबाँ खोलो
हमारे पेशवाए-मुल्क, गाँधी जी की जय बोलो"

अकबर इलाहाबादी ने अपने दौर में ही गाँधी युग की घोषणा कर दी थी। उन्होंने अपने जमाने की नब्ज पकड़ ली थी और साँस के हर उतार-चढ़ाव के साथ, हर राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक उथल-पुथल के बीच उन्होंने गाँधी के दर्शन का क्रान्तिकारी महत्त्व समझ लिया था और दृढ़ विश्वास के साथ आह्वान किया था कि,

इन्कलाब आया, नयी दुनिया, नया हंगामा है
शाहनामा हो चुका, अब दौरे गाँधीनामा है

आज जब पूरी दुनिया हथियारबन्द होकर बारूद के ढेर पर बैठी है और एक दूसरे को कातिल की निगाहों से देख रही है तो इनसान को, धरती को, पूरी सृष्टि को गाँधी की सेना ही बचा सकती है।

लश्करे गाँधी को हथियारों की कुछ हाजत नहीं
हाँ मगर बेइन्तहा सब्र-ओ-कनाअत[1] चाहिए
(1. धैर्य और सन्तोष)

शम्सुर्रहमान फारूकी साहब ने बहुत खूब लिखा है कि, "हिन्दुस्तान की जंगे आजादी की तारीख जब तक जिन्दा है और गाँधी का नाम जब तक जिन्दा है, उस वक्त तक 'गाँधीनामा' भी बामानी रहेगा।" (पूर्वोक्त किताब से)। भारतीय इतिहास में महात्मा गाँधी हमेशा जगमगाते रहेंगे और भारतीय कविता के इतिहास में अकबर इलाहाबादी भी हमेशा चमकते रहेंगे।

(इस आलेख के सामग्री संचयन में वरिष्ठ अधिवक्ता एवं उर्दू साहित्य के मर्मज्ञ जनाब अब्दुल रशीद सिद्दीकी साहब का आभार।)

व्यंग्य

प्रधानमंत्री की छवि बनाना भी हमारा राष्ट्रीय और नागरिक कर्तव्य

-- विष्णु नागर

आपको सरकार के नये आदेशों-अनुदेशों की जानकारी है या नहीं? नहीं है तो जान लीजिए क्योंकि यह आदेश कर्नाटक में लागू भी हो चुका है! आदेश यह है कि हमने-- आपने अब से प्रधानमंत्री की छवि बिगाड़ने की कोई भी कोशिश की तो बच्चा हो या बड़ा, उस पर देशद्रोह-राजद्रोह का केस चल जाएगा, जेल हो सकती है। यानी अब प्रधानमंत्री की छवि न बिगाड़ना भी-- मतलब उनके काम की, भाषण की आलोचना न करना भी-- हमारे नागरिक कर्तव्यों में शामिल हो चुका है। जल्दी ही यह आदेश जारी हो सकता है कि प्रधानमंत्री की छवि बनाना भी हमारा राष्ट्रीय और नागरिक कर्तव्य है। हम जो आज तक अपनी छवि ही नहीं बना पाये, प्रधानमंत्री की छवि क्या बनाएँगे? मतलब हम अपनी नागरिकता से जाएँगे। वैसे छवि बनाने के काम में मोदी जी स्वयं बहुत कुशल हैं। इस एकमात्र मोर्चे पर उनकी सफलता असंदिग्ध और अविवादित है।

आजकल इस काम के लिए मोदी-शाह दिल्ली की प्रदूषित हवा को और प्रदूषित करके अपनी राष्ट्रवादी छवि बना रहे हैं, जिससे इन दोनों के स्वास्थ्य को खतरा पैदा हो सकता है। वैसे अभी तक मोदी जी का शारीरिक स्वास्थ्य बताते हैं कि बहुत अच्छा है और शाह साहब का भी शायद बुरा नहीं होगा। उन्हें अपने स्वास्थ्य की खातिर इससे बचना चाहिए था। हम तो भई मुफ्त की सलाह ही दे सकते हैं। और मुफ्त की दूसरी चीजों को तो लोग रिस्क लेकर भी लपक लेते हैं मगर ऐसी सलाह कोई नहीं मानता। वैसे भी मोदी-शाह किसी भी तरह की सलाह मानने के लिए बने ही नहीं हैं। उन्हें बोलना खूब आता है, सुनना नहीं। इससे इन्हें एलर्जी है।

आपने पढ़ा होगा कि कर्नाटक के एक स्कूल में नागरिकता संशोधन कानून के खिलाफ एक नाटक खेला गया तो उस स्कूल पर देशद्रोह का केस दर्ज कर दिया गया। बच्चों तक से पूछताछ की गयी। स्कूल की प्रिंसिपल साहिबा और एक बच्चे की माँ को गिरफ्तार कर लिया गया है। कहा गया कि इससे मोदी जी की छवि बिगाड़ी जा रही थी। उधर इसी कर्नाटक के एक संघी स्कूल में बाबरी मस्जिद गिराकर राममंदिर बनाने का नाटक भी खेला गया था। उस पर न तो "देशप्रेम" का केस दर्ज हुआ, न उसे भाजपा की छवि बनाने के लिए पुरस्कृत किया गया। आप कहेंगे कि "देशप्रेम" का भी केस दर्ज होता है क्या? नहीं होता है तो अब होना चाहिए। अब शब्दों के मायने बदल चुके हैं। "देशप्रेम" का अर्थ अब देशप्रेम और "देशद्रोह" का मतलब अब देशद्रोह नहीं रह गया है। सब उलट-पुलट चुका है। इसलिए अब "देशप्रेम" पर केस दर्ज होने का वक्त है। आजकल हर संघी, हर भाजपाई नफरत के बीज बोकर, उसकी फसल काटकर समझता है, वह देशभक्त है, "देशप्रेमी" है। आजकल गोडसे और उनके वंशज मुँह पर कपड़ा बाँधकर सिर फोड़ रहे हैं, यह "देशभक्ति" है। मंत्री "गोली मारो सालों को" के नारे लगवा रहे हैं और इससे प्रेरित युवक जामिया मिलिया में कट्टा लेकर गोली मार रहे हैं, यह "देशभक्ति" है। जो गुण्डों को जेएनयू में घुसकर सर फोड़ने की स्वतंत्रता दे, वह पुलिस कहलाने लगी है। और जो संविधान की बात करते हैं, वे गद्दार कहे जाने लगे हैं। इसलिए अर्थ अब उलट चुके हैं। अब "देशप्रेम" से सुगंध नहीं, दुर्गंध आने लगी है।

दिल्ली में आजकल यह दुर्गंध बहुत अधिक फैली हुई है। जिनका मन इस दुर्गंध को दूर से सूँघकर मन नहीं भरा है, वे आयें दिल्ली। चुनाव होने से पहले आयें और अपनी नाक सड़ाने का कीमती अनुभव लेकर जायें। हम दिल्लीवासी तो अब भूल चुके हैं कि हमारी भी कभी एक नाक होती थी वरना अब तक हम आईसीयू में होते!

अब बताइए, ऐसे वातावरण में दुनिया का कोई भी स्कूली नाटक मोदी जी की छवि का क्या कुछ भी बिगाड़ सकता है? उनकी छवि कभी किसी चीज से नहीं बिगड़ती। 1984 के सिखों के नरसंहार से कांग्रेस की छवि बिगड़ गयी थी मगर 2002 के नरसंहार से मोदी जी की छवि बन गयी। वह मुख्यमंत्री से प्रधानमंत्री पद तक पहुँच गये। जब हम सोच रहे थे कि मोदी जी स्वयं अपनी छवि बिगाड़ रहे हैं तो हम क्यों यह कष्ट करें मगर पता चला कि "एण्टायर पोलिटिकल साइंस" का विश्व का यह एकमात्र प्रतिभाशाली विद्यार्थी इस तरह अपनी छवि बना रहा था! 2014 में प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार के रूप में उन्होंने अच्छे दिन, 15 लाख, दो करोड़ रोजगार हर साल देने का वायदा किया, धेलाभर नहीं किया। इससे भी उनकी छवि सुधर गयी। उन्होंने नोटबन्दी की, अर्थव्यवस्था का सत्यानाश किया। छवि उज्ज्वल हो गयी। जीएसटी लाने पर उज्जवलतर हो गयी, सूरज की तेज रोशनी की तरह दमक गयी।

शेष पेज 31 पर...

वैश्विक विरोध प्रदर्शनों का साल

-- मोहित कुमार

संघर्षों से भरा एक और साल गुजर गया। अगर सन 2019 को वैश्विक विरोध प्रदर्शन का साल कहें, तो अतिश्योक्ति न होगी। यह साल अल्जीरिया में सरकार विरोधी आन्दोलन से शुरू होकर दिसम्बर में भारत के 'नागरिक संशोधन कानून' के जबरदस्त विरोध से खत्म हुआ। यह 21वीं सदी का राजनीतिक रूप से अब तक का सबसे सरगर्मी से भरा साल रहा। इस साल से पहले ऐसा लगता था कि नवउदारवाद की जन-विरोधी नीतियों के आगे जनता आत्मसमर्पण कर चुकी है। उसने सभी अन्याय-उत्पीड़न चुपचाप बर्दाश्त करने की ठान रखी है, लेकिन बीते साल ने इसे झुठला दिया। वह शोषक सरमायेदारी से जनता के मोहभंग की व्यापक शुरुआत का साल बन गया है।

साल 2019 की शुरुआत अल्जीरिया में अब्देलअजीज के तानाशाही शासन के खात्मे की माँग के साथ होती है। दो दशक पुराने उसके निरंकुश शासन में आम जनता की हालत बद से बदतर हो गयी थी। लेकिन इस साल जब उसने फिर से राष्ट्रपति पद के लिए दावेदारी पेश करनी चाही तो जनता का आक्रोश फूट पड़ा। लगभग 3 लाख लोग सड़कों पर उतार आये। लगातार 3 महीनों तक आन्दोलन चलता रहा। सरकार ने दमन का रास्ता चुना, लेकिन जनता के साहस और संख्या के सामने सरकार ज्यादा दिनों तक टिक न सकी और अन्त में अब्देलअजीज को इस्तीफा देना पड़ा और नये चुनाव की घोषणा करनी पड़ी। आन्दोलनकारियों ने अपनी इस जीत को केवल पहला कदम बताया और आगे जनता को पूरे लोकतांत्रिक अधिकार दिलाने तक आन्दोलन जारी रखने की बात कही। मुस्कान की क्रान्ति या हिरक आन्दोलन के नाम से चर्चित यह आन्दोलन 2011 के अरब स्प्रिंग की याद दिलाता है, जिसमें जनता ने मिस्र, ट्यूनीशिया, लीबिया आदि की हुकूमतों को तबाह कर दिया था।

अल्जीरिया तो मात्र पहली कड़ी साबित हुआ जैसे-जैसे साल आगे बढ़ता गया नये-नये आन्दोलन पूरी दुनिया में उभरने लगे। इसकी अगली कड़ी हांगकांग में विवादास्पद प्रत्यर्पण कानून के खिलाफ उठा आन्दोलन रहा। दरअसल इस कानून के तहत हांगकांग में होने वाले किसी भी अपराध के अभियुक्त को चीन के सुपुर्द कर उस पर वहाँ की अदालतों में मुकदमा चलाया जा सकता था। ऐसा देखा गया कि ऐसे अधिकांश मामलों में अभियुक्त को दोषी ठहराकर सजा दे दी जाती। लम्बे समय से हांगकांग चीन के प्रभुत्व से बाहर आने के लिए संघर्ष करता रहा है, इस संघर्ष के नेताओं को चीन की सरकार कुचलने पर आमदा थी, जिसके लिए यह कानून लाया जा रहा था। 2 लाख से ज्यादा लोग सड़कों पर उतरकर सरकार के खिलाफ खड़े हो गये। अन्त में सरकार को यह कानून वापस लेना पड़ा, लेकिन आन्दोलनकारी हांगकांग की पूर्ण स्वतन्त्रता तक इस आन्दोलन को जारी रखने पर अड़े हुए हैं।

अगले क्रम में, फ्रांस का "येल्लो वेस्ट" आन्दोलन रहा, जो 21वीं सदी का सबसे लम्बा चलने वाला आन्दोलन बनता जा रहा है। यह आन्दोलन तेल की कीमतों में बढ़ोतरी के खिलाफ विरोध-प्रदर्शन से शुरू हुआ। यह आज फ्रांस में शोषित जनता की आवाज बन गया है। इस आन्दोलन में हर रोज हजारों की संख्या में मजदूर, निजी कर्मचारी, छात्र-नौजवान और नौकरी-पेशा लोग जुड़ रहे हैं। फ्रांसीसी क्रान्ति और पेरिस कम्यून की विरासत वाले इस देश के मजदूर वर्ग ने एक बार फिर संघर्ष का परचम उठा लिया है। सरकारी आँकड़ों के हिसाब से इस आन्दोलन में अब तक 11 लोग मारे गये हैं और 4000 से अधिक घायल हुए। सरकार ने 8400 लोगों को गिरफ्तार किया और 2000 लोगों पर मुकदमा चलाया। लाखों कर्मचारी मैकोन सरकार के खिलाफ अपने पेंशन फण्ड को बचाने के लिए भी संघर्ष कर रहे हैं क्योंकि नयी पेंशन योजना मजदूरों से पेंशन छीन लेने वाली है। इस योजना के तहत तभी पूरी पेंशन मिलेगी, जब मजदूर 64 साल पर सेवानिवृत्त होंगे।

कुछ ऐसा ही नजारा लातिन अमरीका के सबसे समृद्ध देश चिली में देखने को मिला। लाखों लोगों ने मेट्रो रेल के किराये में बढ़ोतरी के खिलाफ राजधानी सैंटियागो में सड़क पर उतरकर सरकार का विरोध किया। सरकारी दमन से 29 प्रदर्शनकारियों की मौत हो गयी। जख्मी लोगों की संख्या ढाई हजार को पार कर गयी और लगभग इससे अधिक लोग गिरफ्तार कर लिये गये। शासन ने जनता में खौफ पैदा करने के लिए अपना खूनी पंजा फैला दिया था। लेकिन सरकार के लिए आन्दोलन को रोकना असम्भव हो गया और अन्त में सरकार को पीछे हटकर माँगें मानने का दिखावा करना पड़ा। दुनिया के अधिकांश देशों की तरह चिली का समाज भयानक असमानता से गुजर रहा है। इसी असन्तोष ने जुझारू आन्दोलन का रूप ले लिया था।

लातिन अमरीका के लगभग हर देश में सरकार विरोधी प्रदर्शन

हुए। वेनेजुएला के लोकप्रिय राष्ट्रपति निकोलस मदुरो के खिलाफ दक्षिणपन्थी नेता जुआन गुइदो ने अपने समर्थकों के साथ प्रदर्शन किया। उसने कई बार मदुरो की सरकार को पलटने की नाकाम कोशिश भी की। कोलम्बिया में सरकार के राजनीतिक-आर्थिक सुधारों के खिलाफ प्रदर्शन किया गया। इक्वाडोर में सरकार द्वारा तेल सब्सिडी खत्म किये जाने के विरोध में प्रदर्शन हुआ।

मध्य-पूर्व के देशों में भी आर्थिक संकट और विरोध प्रदर्शन बढ़ता जा रहा है। लेबनान में राष्ट्रीय कर्ज जीडीपी के 150 प्रतिशत तक पहुँच चुका है, जिसके चलते महँगाई और बेरोजगारी अपने चरम पर है, मजदूरों के सारे अधिकार एक-एक करके खत्म कर दिये गये हैं। लोगों में अन्दर ही अन्दर सरकार के प्रति अविश्वास पैदा हो गया। जब सरकार ने व्हाट्सएप पर टैक्स लगाने का फैसला लिया तो जनता का गुस्सा फूट पड़ा और देश की 20 प्रतिशत से भी अधिक जनता सरकार के खिलाफ सड़कों पर उतर आयी। इराक में एक चौथाई से ज्यादा लोग बेरोजगार हैं, जिसके चलते बड़े पैमाने पर नौजवानों में असन्तोष व्याप्त है। अमरीकी हमले से तबाह और गृह युद्ध में जर्जर हो चुके इराक में भ्रष्टाचार, बेरोजगारी और मूलभूत ढाँचे का अभाव बड़ी समस्याएँ बन गयी हैं। इन्हें दुरुस्त करने के बजाय सरकार ने अमरीकी घुसपैठियों का साथ दिया। अमरीकी साम्राज्यवादी हथियार के दम पर इराक से तेल निचोड़ रहे हैं। बदले में वहाँ जनता की मौलिक जरूरतें भी पूरी नहीं हो पा रही हैं। सरकार के खिलाफ जन-आक्रोश ने तेजी से आन्दोलन का रूप ले लिया और चारों ओर फैल गया। लेकिन सरकार ने भी दमन की इन्तहा कर दी। चार सौ से अधिक लोग मारे गये और बीस हजार गिरफ्तारियाँ की गयीं। उग्र विरोध प्रदर्शन के चलते राष्ट्रपति को इस्तीफा देने पर मजबूर होना पड़ा।

'नवम्बर विद्रोह' के नाम से प्रचलित ईरान का आन्दोलन तब शुरू हुआ, जब पिछले साल सरकार ने तेल की कीमतों में अचानक 200 प्रतिशत की वृद्धि कर दी। शुरू में आन्दोलन शान्तिपूर्ण था, लेकिन सरकार के उकसावे पर हिंसक हो गया। सरकार ने आन्दोलन को दबाने के लिए इण्टरनेट बन्द कर दिया। प्रदर्शनकारियों पर हेलीकॉप्टर और छत से मशीनगन की गोलियाँ दागी गयीं। पन्द्रह सौ लोग मार डाले गये और हजारों लोगों को जेलों में ठूँस दिया गया। इसके चलते उग्र हुए प्रदर्शनकारियों ने 731 सरकारी बैंक की शाखाओं को नष्ट कर दिया। ईरान में 1979 की इस्लामिक क्रान्ति के बाद का यह सबसे उग्र प्रदर्शन था।

सूडान में रोटी की कीमत बढ़ाने के खिलाफ जोरदार प्रदर्शन हुए। इन प्रदर्शनों में वहाँ की ट्रेड यूनियनों ने सक्रिय भूमिका निभायी। इसके चलते राष्ट्रपति उमर अल बशीर को अपना पद गवाँना पड़ा। इससे उसके 30 साल पुराने शासन का अन्त हो गया। खारतोम में सेना ने जनता पर हमला किया। सैन्य मुख्यालय के सामने धरने पर बैठे लोगों पर गोलीबारी करके 118 लोगों की हत्या कर दी गयी। 70 महिलाओं के साथ बलात्कार किया गया और सैकड़ों लोग जख्मी हुए। सूडान में लोकतंत्र की बहाली के लिए जनता को बहुत बड़ी कुर्बानी देनी पड़ी।

2019 जलवायु परिवर्तन के खिलाफ व्यापक होते जनसंघर्षों का भी साल रहा है। ऑस्ट्रेलिया और अमेजन के जंगलों में लगी भयंकर आग ने दुनिया भर के पर्यावरण प्रेमियों को हिलाकर रख दिया। यूरोप के अधिकांश देशों की जनता ने पर्यावरण को बचाने के लिए आन्दोलन का रास्ता चुना। स्वीडन की एक स्कूल छात्रा ग्रेटा थनबर्ग इस आन्दोलन की प्रतीक बन गयी। देखते-देखते यह आन्दोलन मेलबर्न, मुम्बई, बर्लिन, न्यूयॉर्क जैसे बड़े शहरों में फैल गया। इस आन्दोलन में सबसे ज्यादा भागीदारी स्कूली छात्रों और नौजवानों की रही जो भविष्य के प्रति एक उम्मीद पैदा करती है।

भारत में सरकार की एक के बाद एक दमनकारी नीतियों की मार झेल रही जनता का आक्रोश आखिरकार "नागरिकता संशोधन कानून" के खिलाफ फूट पड़ा। सरकार ने इस आन्दोलन को जितना दबाना चाहा उतना ही यह बढ़ता जा रहा हैं, अब महिलाएँ भी इस कानून का विरोध करते हुए सड़कों पर उतार आयी हैं, दिल्ली के शाहीन बाग में चल रहा आन्दोलन इसका जीता-जागता साक्ष्य है। फीस बढ़ोतरी के खिलाफ लम्बे समय से अनेकों विश्वविद्यालयों में आन्दोलन चल रहे हैं। भारत में मजदूर, किसान, आदिवासी, छात्र-नौजवान, बुद्धिजीवी और प्रगतिशील लोग बड़े पैमाने पर आन्दोलन कर रहे हैं।

कोलम्बिया, इण्डोनेशिया, हैती, रूस, चीन, अमरीका आदि देशों में भी जनता अपनी सरकार के खिलाफ अपनी आवाज बुलन्द कर रही है। यह जन आन्दोलन केवल अमरीकी और यूरोपीय महाद्वीप तक ही सीमित नहीं है। जहाँ एक तरफ 2019 में मध्य-एशिया में दूसरे "अरब विद्रोह" का वज्रनाद सुनाई दे रहा है, वहीं भारत, फ्रांस, मिस्त्र, सूडान, चिली आदि देशों में भी सरकार की दमनकारी नीतियों के खिलाफ विरोध प्रदर्शन हो रहे हैं।

आज पाँचों महाद्वीपों पर चल रहे इन आन्दोलनों की तात्कालिक माँगें अलग-अलग जरूर नजर आ रही है, लेकिन इतने बड़े पैमाने पर लोगों का एक साथ सरकार के विरोध में सड़कों पर उतर आना महज एक इत्तेफाक नहीं है। हर देश के आन्दोलन की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं, लेकिन इसके साथ ही साथ उनमें एकरूपता भी है जो इन सबको एक कड़ी से जोड़ता है। आज हम पहले से कहीं अधिक भूमण्डलीकृत दुनिया में जी रहे हैं, जिसके चलते पूँजीवादी व्यवस्था का संकट आज कुछ देशों तक सीमित न रहकर सार्वभौमिक हो गया है। पिछले एक दशक से चल रही वैश्विक मन्दी पूँजीवादी-साम्राज्यवादी व्यवस्था के अन्तर्विरोधों का परिणाम है। इस मन्दी में जहाँ एक तरफ मेहनतकश जनता कंगाल होती जा रही है, वहीं कुछ मुट्ठी भर लोगों की सम्पत्ति में बेहिसाब बढ़ोतरी हो रही है। आज शासक वर्ग आम मेहनतकश जनता के खून की एक-एक बूँद को मुनाफे में बदलने

पर आमदा है। आर्थिक संकट का बोझ केवल मजदूरों पर ही नहीं डाला जा रहा है बल्कि मध्यम वर्ग को मिलने वाली रियायतों और सुविधाओं में भी बड़ी तेजी से कटौती की जा रही है, जिसके चलते इन आन्दोलनों में बड़ी संख्या में मध्यम वर्ग के लोग भी शामिल हो रहे हैं। लम्बे समय से आर्थिक संकट का सामना कर रहे आम लोगों के गुस्से का ज्वालामुखी आखिरकार अलग-अलग आन्दोलनों के रूप में फूट रहा है। हर आन्दोलन का कारण आर्थिक असमानता में छुपा हुआ है। सत्तासीन वर्ग और व्यवस्था से आम जनता का मोहभंग बहुत तेजी से हो रहा है। एक सर्वे के अनुसार आज केवल 17 प्रतिशत अमरीकी मौजूदा व्यवस्था में विश्वास रखते हैं, जबकि 2010 में यह संख्या 40 प्रतिशत थी, फ्रांस में यह संख्या पूरी आबादी की 30 प्रतिशत है।

आज पूरी दुनिया का मेहनतकश वर्ग अंगड़ाई ले रहा है। उसके लिए जिन्दा रहने की एक मात्र शर्त लड़ना है। 2019 में अल्जीरिया, सूडान, लेबनान आदि देशों की सरकारों को आन्दोलनकारियों के सामने झुकना पड़ा। यह भविष्य के लिए अच्छे संकेत जरूर देता है लेकिन साथ ही साथ क्रान्तिकारी नेतृत्व के अभाव में इन आन्दोलनों पर दिशा से भटक जाने और मुक्ति के अपने लक्ष्य तक न पहुँच पाने का खतरा है। 2011 की अरब स्प्रिंग के दौरान मिस्र का उदाहरण इस बात की पुष्टि करता है। वहाँ क्रान्तिकारी नेतृत्व के अभाव के चलते सत्ता दुबारा नये शोषकों के हाथों में आ गयी। आज पूँजीवाद के जिस संकट ने दुनिया को अपनी गिरफ्त में ले लिया है उससे बाहर निकालने का रास्ता इस व्यवस्था के अमूल-चूल परिवर्तन के बिना सम्भव नहीं है, जिसका नेतृत्व क्रान्तिकारी ताकतें ही कर सकती हैं। ○

पेज 28 का शेष...

ऐसे प्रधानमंत्री की छवि बच्चों के एक नाटक से बिगड़ सकती है, यह तो बच्चे भी नहीं मानेंगे मगर कर्नाटक के मुख्यमंत्री येदुयुरप्पा को इतनी सी बात समझ में नहीं आयी तो कोई क्या करे? उन्हें पता होना चाहिए था कि मोदी जी की छवि बिगाड़ने से ही बनती है। बनाने से उनकी भी बिगड़ती है और बनानेवालों की भी। बनाने वाले की गत अर्णब गोस्वामी जैसी हो जाती है, जिसे कुणाल कामरा हवाई जहाज में भी नहीं छोड़ते, जबकि गरीब अर्णब हवाई जहाज में एंकरिंग नहीं कर रहा होता!

मोदी जी, केजरीवाल नहीं हैं भाई कि जहाँ अम्बेडकर, गाँधी तथा संविधान के पक्ष में नारे लग रहे हों, वहाँ जाने से वह बचें तो भी भाई लोग उन्हें आतंकी-नक्सली बना दें। उधर मोदी जी हैं, यूरोपियन यूनियन से लेकर किसान यूनियन तक सबने उनकी छवि बिगाड़ने की कोशिश की मगर बनती ही गयी! वाह रे गाँधी की भूमि गुजरात के सपूत! तुझे पाकर यह देश धन्य हुआ! वैसे यह देश इतना धन्य भी नहीं होना चाहता था। ○

यह दौर है सबसे बुरा और सबसे अच्छा भी

यह दौर है सबसे बुरा और सबसे अच्छा भी
यह दौर है मजहबी नफरतों का
तो साथ ही एकजुटता और भाईचारे का भी
इस दौर में सीख रहे हैं असंख्य लोग
बराबरी और भाईचारे का मतलब
इसी दौर में गढ़े जा रहे हैं
खूबसूरती और प्रेम के नये-नये प्रतिमान
लिखे और गाये जा रहे हैं खूबसूरत तराने

यह दौर है सबसे बुरा और सबसे अच्छा भी,
इसी दौर में सामने आये हैं जनता के
हजारों नये लेखक, कवि, चित्रकार,
कहानीकार और नाटककार भी
इस दौर ने खुद को ज्यादा सृजनशील पाया है
थोड़े से आततायी लोगों ने
लाखों को अहिंसा की राह दिखलायी है,
कल तक जो देते थे महिलाओं को फतवा
उनको भी इस दौर ने खूब डराया है,
सुरक्षा और इज्जत के नाम पर घर में कैद महिलाएँ
सड़कों पर उतर आयीं पूरे देश में
क्या-क्या नहीं कर दिखलाया है
दिलों में मानवता से प्यार उमड़ आया है,
जनता ने अपनी शक्ति को पहचानना शुरू किया है
प्रकृति का नियम ही है परिवर्तन
बहती नदी को कौन रोक पाया है।

--स्वाति सरिता

उत्तराखण्ड मेडिकल कॉलेज की फीस वृद्धि के खिलाफ छात्र आन्दोलन

उत्तराखण्ड में पहले एमबीबीएस और उसके बाद आयुर्वेदिक मेडिकल कॉलेज के छात्रों ने फीस वृद्धि के खिलाफ जुझारू आन्दोलन चलाया। आज स्थिति इतनी भयावह हो गयी है कि सरकार और प्रशासन छात्रों की अवाज सुनने के बजाय फीस बढ़ानेवाले निजी कॉलेज मालिकों के सामने नतमस्तक हो रहे हैं।

उत्तराखण्ड राज्य में 13 निजी और सिर्फ 3 सरकारी आयुर्वेदिक मेडिकल कॉलेज हैं। अक्टूबर 2015 में 13 निजी कॉलेज मालिकों ने मनमाने ढंग से छात्रों की फीस 80,000 रुपये से लगभग ढाई गुना बढ़ाकर 2,15,000 रुपये कर दी। हर राज्य में निजी कॉलेजों की फीस निर्धारण के लिए एक "फीस निर्धारण समिति" होती है, जिसका अध्यक्ष हाई कोर्ट का रिटायर्ड जज होता है। सिर्फ यही समिति फीस निर्धारण का फैसला लेती है। लेकिन आयुर्वेदिक मेडिकल कॉलेज के मालिकों में धन्ना सेठ, रिटायर्ड अधिकारी, उद्योगपति और सरकार में बैठे मंत्री शामिल हैं। फीस बढ़ने से 2000 छात्रों के अभिभावकों पर भारी आर्थिक बोझ पड़ गया। कई छात्रों की स्थिति ऐसी है कि वे बढ़ी हुई फीस नहीं दे पायेंगे, उन्हें अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़नी पड़ेगी। लेकिन मालिकों को छात्रों की पढ़ाई और उनके भविष्य से कोई लेना-देना नहीं। सरकार ने भी उनका साथ देकर अपना रवैया साफ कर दिया।

कॉलेज मालिकों और कॉलेज प्रशासन के खिलाफ छात्रों ने तभी से लड़ाई शुरू कर दी थी, जब फीस बढ़ायी गयी थी। लेकिन प्रशासन ने उनकी कोई बात नहीं सुनी। उलटे उन्हें मुँह बन्द रखने की धमकियाँ दी गयीं और कॉलेज मालिकों के पालतू गुण्डे उन्हें धमकाते रहे। लेकिन छात्रों ने हार नहीं मानी और जब कॉलेज प्रशासन ने बढ़ी हुई फीस वापस नहीं ली, तो छात्रों ने कोर्ट का दरवाजा खटखटाया। छात्र कोर्ट में केस जीत गये और 9 जुलाई 2018 को कोर्ट ने कॉलेज मालिकों को आदेश दिया कि बढ़ी हुई फीस जिन छात्रों ने जमा की है उन्हें 2 सप्ताह में वापस की जाये। कॉलेज ने कोर्ट के आदेश को मानने से इनकार कर दिया। जाहिर है कि कॉलेजों के मालिक कानून को अपने हाथ की कठपुतली समझते हैं। कोर्ट के सिंगल बेंच फैसले को जब कॉलेज मालिकों ने मानने से इनकार कर दिया, तब 9 अक्टूबर 2018 को छात्रों ने हाई कोर्ट की डबल बेंच में दुबारा केस शुरू किया और इस बार भी फैसला छात्रों के हित में ही आया। लेकिन कॉलेज मालिक इसे भी नहीं मान रहे हैं। गौर करने वाली बात यह है कि कोर्ट के आदेश को लागू करवाने में पुलिस-प्रशासन की तरफ से कॉलेज मालिकों के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की गयी। इससे साफ हो जाता है कि इस अन्याय में शासन-प्रशासन सभी कॉलेज मालिकों के साथ खड़ा है।

अन्त में जब छात्रों ने देखा कि कहीं कोई सुनवाई नहीं हो रही है, तो उन्होंने धरना-प्रदर्शन शुरू कर दिया ताकि प्रशासन और सरकार की नीन्द टूटे और निजी कॉलेजों में हो रही लूट का असली चेहरा जनता के सामने आये। उनका धरना प्रदर्शन 63 दिनों तक चला। इसमें एक छात्र 9 दिनों तक आमरण अनशन पर बैठा रहा। सरकार और प्रशासन की तरफ से कोई उनकी सुध लेने धरना स्थल पर नहीं आया। 19वें दिन जब पुलिस आयी, तो उसने छात्रों को मीठी गोली देने की कोशिश की। लेकिन छात्र अपनी माँग पर अड़े रहे और टस से मस नहीं हुए। पुलिस पूरी योजना के तहत अँधेरे में आयी। बहाना था अनशन पर बैठे छात्र को फोर्स फीडिंग कराना और ग्लूकोज चढ़ाना। खुद उस छात्र ने मना कर दिया। इसके बावजूद पुलिस ने छात्रों के साथ जबरदस्ती की, गालियाँ दी, उन्हें पीटा, छात्राओं को भी नहीं छोड़ा। छात्र चीखते-चिल्लाते रहे लेकिन पुलिस दमन के लिए आयी थी और इनसानियत का रहा-सहा लबादा भी उतारकर फेंक दिया था। उसने बिलकुल दरिन्दों की तरह व्यवहार किया। छात्र-छात्राओं को गम्भीर चोटें आयीं, लेकिन किसी पुलिसवाले का बाल भी बाँका नहीं हुआ, क्योंकि हिंसा केवल पुलिस की तरफ से की गयी थी।

जिस पुलिस प्रशासन का कर्तव्य है कि वह कोर्ट के आदेश को लागू करवाये, वह आज उसका उलटा कर रहा है। कोर्ट का आदेश छात्रों के पक्ष में है और कोर्ट ने कॉलेज मालिकों को छात्रों की फीस वापस करने का आदेश दिया है। पुलिस प्रशासन को कॉलेज मालिकों को गिरफ्तार करना चाहिए, लेकिन वह ठीक उसका उलटा कर रही है।

परीक्षाएँ आने वाली हैं। छात्र परेशान और हताश हैं। उन्हें कहीं से कोई उम्मीद नजर नहीं आ रही है और कॉलेज मालिक उन्हें परीक्षा में बैठने नहीं दे रहे हैं। कॉलेज मालिक मनमानी पर उतर आये हैं। छात्रों ने भी कमर कस ली है और फिर से निजी शिक्षण संस्थानों में हो रही लूट के खिलाफ धरना-प्रदर्शन करने की घोषणा कर दी है।

जरा सोचिये अगर आपके साथ ऐसा होता और उन पुलिस वालों के बच्चों के साथ ऐसा होता तो क्या वे लोग धरना-प्रदर्शन नहीं करते? तब भी क्या पुलिस अपने बच्चों पर लाठियाँ बरसाती?

आज की मौजूदा सरकारें, चाहे वह केन्द्र की हो या राज्य की, हर क्षेत्र में निजीकरण और मुनाफे की लूट को बेतहाशा बढ़ावा दे रही हैं। सरकारी स्कूलों और सार्वजनिक संस्थानों पर ताला लगा रही हैं। इन्हें निजी हाथों में कौड़ियों के दाम बेच रही हैं। शिक्षा के निजीकरण का मतलब है कि शिक्षा को बिकाऊ माल बना देना। जिनके पास पैसा नहीं है, वे शिक्षा से वंचित रह जायेंगे। सरकारें सस्ती शिक्षा, सस्ती स्वास्थ्य सुविधाओं और सबको रोजगार जैसी मूलभूत जरूरतों को जनता से छीन रही हैं। यही वजह है कि एक तरफ लोग इलाज के अभाव में बीमारियों से मर रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ मेडिकल के डॉक्टर और छात्र सड़कों पर आन्दोलन कर रहे हैं। यह अन्याय कब तक चलता रहेगा?

-- कुलदीप कुमार

ऑस्ट्रेलिया की आग का क्या है राज?

बीते दिसम्बर में ऑस्ट्रेलिया के जंगलों की आग ने भयानक रूप ले लिया। इसने लगभग सौ करोड़ जीव-जन्तुओं को जलाकर राख कर दिया। इनमें इनसानों की अट्ठाईस जिन्दगियाँ भी शामिल हैं। ब्रिटेन के विशेषज्ञों का मानना है इस आग के चलते दस हजार करोड़ जानवरों की जिन्दगी तबाह हो गयी। इस घटना ने दुनिया को झकझोर दिया और सन्देश दिया कि अब जलवायु आपातकाल पर बहस करने के दिन बीत गये हैं। खतरा मुहाने पर नहीं है, बल्कि हम खतरे से घिरे हुए हैं-- "धरती जल रही है।"

ऑस्ट्रलियाई जंगल में लगी आग का इतिहास देखें तो पता चलता है कि साल 1920 के बाद से हर साल तापमान में लगातार वृद्धि होती गयी, जिसमें 1990 के बाद बहुत बड़ी छलांग लगी। 2019 सबसे गर्म साल था। यह साल 2018 की तुलना में औसतन डेढ़ डिग्री अधिक गर्म था। वहीं बारिश की भारी कमी ने ऑस्ट्रेलिया के बहुत बड़े हिस्से को सूखे की चपेट में ले लिया। बीते साल की कम बारिश ने पिछले 120 सालों का रिकॉर्ड तोड़ दिया, जिससे सूखे का कहर और बढ़ गया।

इस समस्या के पीछे प्रकृति की गतिविधियों में इनसान के अवांछित हस्तक्षेप का बहुत बड़ा हाथ है। ऑस्ट्रेलिया दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा कोयला निर्यातक देश है। साल 2018 में जीडीपी का साढ़े तीन प्रतिशत, यानी 47.65 खरब रुपये कोयले के निर्यात से आया था। जहाँ कोयले की खदानें हैं, वहाँ बढ़ते तापमान और गर्म हवाओं के कारण आग तेजी से फैलती गयी और शहरी इलाकों की तरफ बढ़ती गयी। 2019 में 62 हजार आग लगने की घटनाएँ हुईं। इसके बावजूद ऑस्ट्रेलिया का शासक वर्ग कुम्भकरण की नीन्द सोता रहा।

2019 की गर्मी में अमेजन वर्षा-वन का बड़ा हिस्सा जलकर राख हो गया। उस समय दुनिया भर में बड़े-बड़े जलवायु सम्मलेन हुए। लेकिन धरातल पर कुछ नहीं किया गया। इसलिए ऑस्ट्रेलिया के जंगलों की आग से बचाव की कोई तैयारी नहीं की गयी और अमेजन की आग से 6 गुना ज्यादा बड़ी ऑस्ट्रेलियाई आग को फैलने के लिए छोड़ दिया गया।

विशेषज्ञ बताते हैं कि कोयला खनन और जीवाश्म ऊर्जा के भारी इस्तेमाल के कारण धरती का तापमान तेजी से बढ़ जाता है, जिससे आग की घटनाओं में वृद्धि देखी जा रही है। अमेजन वर्षावन, साइबेरिया के जंगल तथा ऑस्ट्रेलिया की आग और कैलिफोर्निया के कैम्प फायर ने जलवायु आपातकाल को अधिक गम्भीरता से रेखांकित किया है। दुनिया भर के वैज्ञानिकों और रिसर्च संस्थाओं के द्वारा जलवायु आपातकाल की घोषणा के बावजूद शासक वर्ग अपनी मनमानी करने पर उतारू है। प्रकृति का दोहन या लूट ऐसे की जा रही है मानों यह खैरात में मिली हो। मुनाफे की हवस ने हमारी धरती माँ को इतनी बेरहमी से लूटा है कि जल, जंगल, जमीन सहित पूरा वातावरण नष्ट होने की कगार पर है। इन्हें इनसानियत और प्रकृति की कोई परवाह नहीं है।

ऑस्ट्रलिया के प्रधानमंत्री स्कॉट मॉरिसन फरमाते हैं कि यह संकट मात्र जलवायु परिवर्तन का नतीजा है। वे यह बताना भूल जाते हैं कि कैसे जलवायु परिवर्तन आज जलवायु आपातकाल में बदल गया है। इसका मुख्य कारण जीवाश्म ईंधन का ज्यादा से ज्यादा इस्तेमाल है। प्रधानमंत्री मॉरिसन जीवाश्म ईंधन के सबसे बड़े समर्थक हैं। ऑस्ट्रेलिया में वहाँ की जनता के भारी विरोध के बाद भी इन्होंने अडानी ग्रुप को कोयला खदानों में निवेश की मंजूरी दे दी। जीवाश्म ईंधन कम्पनियों को सरकार हर साल 85,300 करोड़ रुपये की छूट देती है। अगर परोक्ष सब्सिडी की बात की जाये तो यह धनराशि 2,06,200 करोड़ रुपये तक पहुँच जाती है।

ऑस्ट्रेलिया के स्टॉक एक्सचेंज की 30 बड़ी कम्पनियों में से 6 कम्पनियाँ खनन या जीवाश्म ईंधन की हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ऑस्ट्रेलिया की अर्थव्यवस्था पर जीवाश्म ईंधन कम्पनियों का कितना बड़ा दबदबा है। निर्यात से मिलने वाली आय में 15 प्रतिशत हिस्सा कोयले का है। ऑस्ट्रेलिया का शासक वर्ग पूँजी और सत्ता के लिए हमारी धरती और हमारी जिन्दगी की कोई परवाह नहीं करता।

इतनी भयावह आग लगने के बावजूद हम देखते हैं कि वहाँ के समुदायों को आग बुझाने में कोई सहयोग नहीं दिया गया जबकि गिब्सलैण्ड के एक आदिवासी समुदाय-- लेक टायर्स को मीडिया में दिखाया गया जो एक छोटी टंकी के सहारे आग पर काबू पाने की कोशिश कर रहे थे। दूसरी ओर प्रधानमंत्री स्कॉट मॉरिसन के नये विमान की कीमत 177 करोड़ रुपये है।

कुल कार्बन उत्सर्जन में अग्रणी अमरीका ग्लोबल वार्मिंग के लिए सबसे अधिक जिम्मेदार है लेकिन ऑस्ट्रेलिया भी उससे पीछे नहीं। 2018 में ऑस्ट्रेलिया का प्रति व्यक्ति कार्बन उत्सर्जन 16.77 मीट्रिक टन था, जबकि अमरीका का 16.14 मीट्रिक टन। कार्बन उत्सर्जन से ही ग्लोबल वार्मिंग हो रही है। इसके बढ़ते प्रभाव के चलते दुनिया के जंगल आग की चपेट में आते जा रहे हैं।

आज हम आग से तपती धरती पर जीने को मजबूर हैं। इसके जिम्मेदार शासक वर्ग ने अपना रुख तय कर लिया है कि वे अपनी इस लूट को जारी रखेंगे, चाहे दुनिया खत्म ही क्यों न हो जाये। अमरीकी राष्ट्रपति, ऑस्ट्रेलियाई प्रधानमंत्री या दुनिया के तमाम शासक वर्ग की दिशा और उनके द्वारा उठाये गये कदम यह दर्शाते हैं कि उन्हें इस धरती से कोई लगाव नहीं है। अब सवाल उठता है कि इंसाफ पसन्द और पर्यावरण प्रेमी दुनिया को बचाने के लिए कदम आगे बढ़ाते हैं या नहीं। दुनिया की मेहनतकश आवाम की जिन्दगी संकट में है। एक तरफ तो अमानवीय शोषण और दूसरी तरफ प्रकृति की लूट से आयी भयावह आपदाओं, जहरीले पानी, खाना, हवा और निरन्तर बढ़ती गर्मी ने उनका जीवन नारकीय बना दिया है। आज दुनिया के सभी जीव-जन्तुओं के सामने मौत का संकट है। अगर शोषण और प्रकृति की लूट पर टिकी व्यवस्था को रोका नहीं गया तो धरती पर जीवन समाप्त हो जायेगा। देर बहुत पहले ही हो चुकी है, आज धरती का जितना हिस्सा सही-सलामत बचा है उसको बचाने का सवाल है।

-- अरुण कुमार

पंकज श्रीवास्तव की गजल

जाने-अनजाने गुलामी को बजा[1] कहते रहे
बरहमी[2] को भी तुम्हारी इक अदा कहते रहे

ख्वाब के खलिहान में फसलें कभी पकती नहीं
बीज छितराने का लेकिन सिलसिला कहते रहे

तन से, मन से और धन से हो सकें आजाद सब
हमको ये जुमला बड़ा अच्छा लगा, कहते रहे

इस तरह उसने फँसाया सबको ही मँझधार में
नाखुदा[3] था फिर भी सब उसको खुदा कहते रहे

लोग ऐसे जुल्म पर चुप क्यों रहे, ये क्या हुआ
जल गया कश्मीर तो रोशन हुआ कहते रहे

आदमीयत का सफर हो ही नहीं पाया तमाम
रहनुमा गुजरा किये, हम मर्सिया कहते रहे।

1. बजा-- ठीक, दुरुस्त
2. बरहमी-- अत्याचार, नाराज़गी
3. नाखुदा-- नाविक, जहाज का कप्तान

एलआइसी में हिस्सेदारी बेचने का ऐलान

बजट में सरकार द्वारा 'भारतीय जीवन बीमा' (एलआइसी) में अपनी हिस्सेदारी बेचने के ऐलान के बाद एलआइसी के भविष्य और उसमें निवेश की गयी अपनी बचत की रकम को लेकर लोगों के मन मे कई शंकाए उठ खड़ी हुई हैं! अपना पेट काट कर खून-पसीने की कमाई से व्यक्ति एलआइसी जैसी संस्थाओं में जमा करके रखता है तो सरकार को यह आश्वस्त करना जरूरी है कि उसकी रकम सुरक्षित रहेगी, लेकिन मोदी सरकार हर वह काम कर रही है जिससे लोगों में डर बढ़ता जा रहा है।

हमें यह समझना होगा कि अब तक एलआइसी को भरोसे का प्रतीक क्यों कहा जाता है? एलआइसी में ऐसी क्या अलग बात है जो दूसरी बीमा कम्पनियों में नहीं है? ऐसा क्यों है कि देश मे बीमा का दूसरा नाम एलआइसी ही हो गया है?

देश के कुल जीवन बीमा में से 76.28 फीसद एलआइसी के पास है। दरअसल यह भरोसा किसी दल विशेष की सरकार पर नहीं है। यह भरोसा देश की जनता का अपने संस्थान पर भरोसा है कि इसमें निवेश की गयी रकम डूबेगी नहीं!

एलआइसी मूल रूप से एक सरकारी कम्पनी है। सरकार की हिस्सेदारी आज एलआइसी में 100 फीसद है। यह बात इसे दूसरी कम्पनियों से अलग करती है। एलआइसी की स्थापना 1956 में हुई थी और इसके लिए नेहरू सरकार ने बकायदा संसद से एक अधिनियम पारित किया यानी एलआइसी के कामकाज के लिए संसद ने अलग से कानून बना रखा है। वैसे तो देश के बीमा उद्योग पर इंश्योरेंस रेगुलेटरी डेवलेपमेंट अथॉरिटी (आइआरडीए) निगरानी करती है, लेकिन एलआइसी की स्थिति इसलिए अलग है कि उसे इस कानून के तहत एक विशिष्ट दर्जा दिया गया है।

अब यह समझिए कि इस कानून में हमारी निवेश की गयी रकम की सुरक्षा के लिए क्या विशेष उपबन्ध किया गया है।

एलआइसी अधिनियम 1956 की धारा 37 कहती है कि एलआइसी बीमा की राशि और बोनस को लेकर अपने बीमाधारकों से जो भी वादा करती है, उसके पीछे केन्द्र सरकार की गारण्टी होती है। यह इस कानून का सबसे महत्वपूर्ण उपबन्ध है। हमारे द्वारा किये गये निवेश की गारण्टी देश की सरकार ले रही है। यह सोवरन गारण्टी है।

आप समझ ही गये होंगे कि इस उपबन्ध का मतलब क्या है। यह कितना महत्वपूर्ण है।

अब क्या होने जा रहा है वह समझिए। जैसा कि 2020 के यूनियन बजट में कहा गया है कि सरकार अब एलआइसी का आईपीओ (इनीशियल पब्लिक ऑफरिंग) लाने जा रही है यानी उसके शेयर बाजार में उतारने जा रही है। इस वित्त वर्ष की दूसरी तिमाही में एलआइसी का आइपीओ आएगा। लेकिन ऐसा करने से पहले सरकार को एलआइसी अधिनियम में संशोधन करना होगा ओर सूत्रों का कहना है कि इस विनिवेश के लिए धारा 37 में दी गयी गारण्टी को बदलने की जरूरत होगी।

इसलिए यह कहा जा रहा है कि एलआइसी में सरकारी हिस्सेदारी में किसी भी तरह की छेड़छाड़ से बीमाधारकों का इस संस्थान पर से भरोसा हिला जायेगा। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण मसला है और विपक्षी दल इस बात का संज्ञान लेते हुए यह प्रश्न संसद में उठा सकते हैं और मोदी सरकार से यह पूछ सकते हैं कि एलआइसी का आईपीओ लाने पर सोवरन गारण्टी पर क्या प्रभाव पड़ेगा, जो सरकार द्वारा एलआइसी में जमा रकम पर दी जाती है?

इस बात से जमाकर्ताओं का कोई मतलब नहीं है कि यह दशक का सबसे बड़ा आइपीओ साबित हो सकता है या यह दुनिया का सबसे बड़ा आइपीओ साबित हो सकता है। वे सिर्फ यह चाहेंगे कि एलआइसी में जमा उनकी रकम सुरक्षित रहे, उसकी गारण्टी बरकरार रहे और कुछ नही?

-- गिरीश मालवीय (साभार)

केन्द्र सरकार ने 4 फरवरी को कहा कि **'लव जिहाद'** मौजूदा कानूनों के तहत परिभाषित नहीं है और इससे जुड़ा कोई मामला केन्द्रीय एजेंसियों के संज्ञान में नहीं आया है।

सरकार ने कहा कि संविधान का अनुच्छेद 25 किसी भी धर्म को स्वीकारने, उस पर अमल करने और उसका प्रचार-प्रसार करने की आजादी देता है। उन्होंने कहा कि केरल उच्च न्यायालय सहित कई अदालतों ने इस विचार को सही ठहराया है।

'लव जिहाद' कट्टरपंथी हिन्दू समूहों द्वारा दुष्प्रचारित शब्द है, जिसके अनुसार वे मानते हैं कि यह मुस्लिम पुरुषों का हिन्दू महिलाओं को धर्मांतरण और विवाह में फँसाने का एक संगठित प्रयास है। उनका मानना है कि इन कथित उद्देश्यों में भारत की मुस्लिम आबादी का विस्तार और इस्लामिक स्टेट का समर्थन शामिल है। **(द वायर से साभार)**

जेफ बेजोस का भारत दौरा और पीयूष गोयल का विवादास्पद बयान

नयी दिल्ली में आयोजित वैश्विक संवाद सम्मेलन 'रायसीना डायलॉग' में पीयूष गोयल ने कहा, "अमेजन एक अरब डॉलर निवेश कर सकती है... इसलिए ऐसा नहीं है कि वे एक अरब डॉलर का निवेश कर भारत पर कोई एहसान कर रहे हैं।" इस बयान पर कारोबारी जगत में हलचल मच गयी है। इसे जहाँ एक ओर विदेशी निवेश के लिए घातक माना जा रहा है। वहीं दूसरी ओर, ऑनलाइन कम्पनियों के खिलाफ विरोध प्रदर्शन कर रहे छोटे दुकानदारों को लुभानेवाला भी बताया जा रहा है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का कहना है कि 'सरकार का यह बयान भारत के कारोबारी हित में नहीं है। यह भारत में होनेवाले विदेशी निवेश पर बुरा असर डालेगा और इससे विदेशी निवेशक देश से पूँजी लेकर जा सकते हैं।'

सरकार का यह बयान देश के हालात के बारे में एक तस्वीर पेश करता है। इस तस्वीर में एक त्रिभुज है, जिसके तीन कोनों पर क्रमशः विदेशी पूँजी के मालिक जेफ बेजोस, देशी पूँजी के मालिक मुकेश अम्बानी और देश की छोटी पूँजी के मालिक लाखों व्यापारी हैं। यह बयान इन तीन ताकतों के बीच के अन्तर्विरोध का आवश्यक परिणाम है।

अमेजन के मालिक जेफ बेजोस ने कहा कि अमेजन अगले 5 सालों में 70 हजार करोड़ रुपये के "मेक इन इण्डिया" उत्पाद का निर्यात करेगी। यह निवेश उनकी कम्पनी की ओर से लघु और मध्यम उद्योग के लिए किया जायेगा। उनका दावा है कि इससे ये उद्योग ऑनलाइन कारोबार से जुड़ सकेंगे। बेजोस तीन दिनों की यात्रा पर भारत आये। उनकी यह यात्रा ऐसे समय हुई जब भारत आर्थिक संकट से जूझ रहा है, मुकेश अम्बानी ने जिओ-मार्ट लॉन्च करने की घोषणा कर दी है, भारत के छोटे व्यापारियों और दुकानदारों के कारोबार में बहुत तेज गिरावट हो रही है, भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग ने अमेजन के खिलाफ जाँच का आदेश दिया है।

पीयूष गोयल के बयान का विदेशी निवेश पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसका अन्दाजा इसी बात से लग जाता है कि उनके बयान पर नाराजगी जताते हुए एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी के बड़े अधिकारी ने कहा कि निवेश को बढ़-चढ़कर बुलावा दिया जाता है और इसे गर्व की बात माना जाता है, लेकिन ऐसे बयान से विदेशी कम्पनियाँ भारत में निवेश करने से कतराएँगी। इससे विदेशी निवेश हतोत्साहित होगा।

छोटे व्यापारी और दुकानदार भाजपा के पुराने समर्थक रहे हैं, जिसे वह नाराज नहीं करना चाहती। उन्हें खुश करने के लिए ऐसे बयान दिये जा रहे हैं। जाहिर है कि गोयल के बयान से व्यापारियों का संगठन "कन्फेडरेशन ऑफ ऑल इण्डिया ट्रेडर्स" खुशी जाहिर करे। लेकिन यह संगठन क्या व्यापारियों की तबाही के लिए जिम्मेदार सरकारी नीतियों को चिन्हित करेगा? सच्चाई तो यह है कि कांग्रेस-भाजपा की आर्थिक नीतियों ने इन व्यापारियों और दुकानदारों को लगभग तबाह कर दिया है। अमेजन और फ्लिपकार्ट का ऑनलाइन कारोबार और डीकैथालोन-वालमार्ट के खुदरा कारोबार पर कब्जे ने उन्हें भारी नुकसान पहुँचाया है। छोटे दुकानदार आरोप लगाते रहे हैं कि सरकार ने नियमों का उल्लंघन कर इन कम्पनियों को भारी राहत दी है। अमेजन और फ्लिपकार्ट जैसी ई-कॉमर्स कम्पनियाँ अपने ग्राहकों को भारी छूट देती हैं। वे ऐसा कैसे कर पाती हैं इसके बारे में पता करने के लिए भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग ने जाँच का आदेश दिया है। यह जाँच आदेश भी सरकार की ओर से छोटे व्यापारियों और दुकानदारों को लुभाने के लिए ही दिया गया है। यहाँ यह भी सवाल है कि अम्बानी के जिओ-मार्ट से क्या छोटे व्यापारी और दुकानदार सुरक्षित रह पायेंगे?

जेफ बेजोस दुनिया के सबसे अमीर व्यक्ति हैं और वे ई-कॉमर्स बिजनेस के बहुत बड़े खिलाड़ी हैं। पिछले 20 सालों में वे अमेजन के अपने कारोबार से जमीन से आसमान पर पहुँच गये। इस कम्पनी ने ऑनलाइन व्यापार का पूरा साम्राज्य खड़ा कर दिया है। इस साम्राज्य ने दुनिया भर के करोड़ों व्यापारियों और दुकानदारों के व्यवसाय को ग्रहण लगा दिया है। अमेजन का साम्राज्य इन्हीं के कारोबार को छीन कर खड़ा हुआ है, उसने न तो बाजार में अपना कोई नया उत्पाद उतारा है और न ही कोई तकनीक विकसित की है।

विश्लेषक ऐसा मान रहे हैं कि यह लड़ाई जेफ बेजोस और मुकेश अम्बानी के बीच है, जो क्रमशः दुनिया के और भारत के सबसे अमीर शख्स हैं। मोदी सरकार ने ई-कॉमर्स कम्पनियों के लिए अभी कई नये नियम बनाये हैं, उससे अम्बानी की जिओ-मार्ट को भारी लाभ मिलेगा। दरअसल भारत की आर्थिक व्यवस्था देशी-विदेशी पूँजी के संश्रय से चलायी जा रही है। भारत की जनता

के खिलाफ दोनों का हित एक-दूसरे से जुड़ता है, लेकिन उसमें टकराव भी है। आर्थिक संकट के समय यह टकराव बढ़ जाता है और सतह पर दिखायी देने लगता है।

मुकेश अम्बानी की रिलायंस इण्डस्ट्रीज ने फैसला किया है कि उनकी दो सहयोगी कम्पनियाँ रिलायंस रिटेल और रिलायंस जिओ एक साथ मिलकर काम करेंगी और इसे ही जिओ-मार्ट नाम दिया गया है। यह कम्पनी लगभग 50,000 सामानों का व्यापार करेगी। इससे खुदरा व्यवसाय की दुनिया में भूचाल आने की सम्भावना दिखायी दे रही है। रिलायंस भी भारत के छोटे व्यापारियों और दुकानदारों का कारोबार हथियाने की फिराक में है। इसलिए इनके सामने दो खतरे हैं, भारत की बड़ी पूँजी का और विदेशी पूँजी का। उन्हें अपने आन्दोलन की धार इन दोनों के खिलाफ मोड़नी होगी और सरकार के धोखे में नहीं आना होगा। यह तय है कि सरकार उनके हितों के खिलाफ अम्बानी की मदद कर रही है। सरकार के नीतिगत फैसले जेफ बेजोस के खिलाफ अम्बानी को ही राहत देंगे। उसके खोखले बयान से छोटे व्यापारियों और दुकानदारों को खुश नहीं हो जाना चाहिए क्योंकि पूँजी निवेश के लिए लालायित सरकार अमेजन जैसी बहुराष्ट्रीय कम्पनी से भी बैर मोल लेना नहीं चाहेगी।

-- विक्रम प्रताप

कर्ज डिफॉल्टर मामले में सुप्रीम कोर्ट ने लिया संज्ञान

बैंकों से कर्ज लेकर डिफॉल्टर मामलों में सुप्रीम कोर्ट ने वसूली के संसाधनों को बढ़ाने को लेकर सवाल उठाये हैं। कोर्ट ने केन्द्र को कहा कि वह बताये कि क्या मौजूदा संसाधनों से नियमों के मुताबिक तय समय सीमा में कर्ज वसूली की जा सकती है?

कोर्ट ने केन्द्र सरकार से कर्ज वसूली के लिए संसाधन बढ़ाने को लेकर क्या-क्या किया जा रहा है, इस बारे में बताने को कहा है।

कोर्ट ने पूछा, कर्ज वसूली को लेकर सरकार का क्या एक्शन प्लान है? डीआरटी में कर्ज वसूली के लम्बित केसों की सूची भी सुप्रीम कोर्ट ने माँगी है।

बैंकों से कर्ज लेकर डिफॉल्टर होने के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने आज फैसला सुनाया है। कोर्ट ने आदेश सुरक्षित रखते हुए कहा था कि इन कर्ज डिफॉल्टरों के नाम सार्वजनिक करने से कोई मकसद हल नहीं होगा। हमें ये देखना है कि इस समस्या की जड़ कहाँ है और इससे कैसे निपटा जा सकता है। कोर्ट ने आरबीआई की सीलबन्द रिपोर्ट देखने के बाद कहा था कि 500 करोड़ से ऊपर के 57 डिफॉल्टरों पर ही 85 हजार करोड़ रुपये का कर्ज बकाया है जो कि गम्भीर बात है।

सुप्रीम कोर्ट ने केन्द्र सरकार से तीन हफ्ते में रिपोर्ट दाखिल कर ये बताने को कहा था कि उसके पास कर्ज वसूली के लिए क्या एक्शन प्लान है। कोर्ट ने कहा कि केन्द्र की एक्सपर्ट कमेटी जो इस पर विचार कर रही है, उसकी रिपोर्ट आने के बाद ही अगला कदम उठाएँगे।

दरअसल, 16 फरवरी को सुप्रीम कोर्ट ने 500 करोड़ रुपये और उससे ज्यादा के कर्ज डिफॉल्टरों की सूची माँगी थी और इसी के तहत आरबीआई ने सुप्रीम कोर्ट में लिस्ट दाखिल की थी।

सुनवाई के दौरान याचिकाकर्ता के वकील प्रशान्त भूषण ने कहा कि ये सूची सार्वजनिक की जानी चाहिए, जबकि आरबीआई ने कहा कि सूची के नाम गुप्त रहने चाहिए, क्योंकि ज्यादातर डिफॉल्टर विलफुल डिफॉल्टर नहीं हैं। ऐसे में ये नाम पब्लिक होते हैं तो नियमों के खिलाफ होगा, लेकिन चीफ जस्टिस ने कहा कि ये लोग बैंकों का पैसा लेकर वापस नहीं कर रहे। ऐसे लोगों के नाम सार्वजनिक होते हैं तो इसमें डिफॉल्टरों के अलावा किसी पर क्या असर पड़ेगा?

(आभार-- एनडीटीवी इण्डिया)

सहकारी बैंक घोटालों का जारी सिलसिला

नया साल शुरू होते ही भारतीय रिजर्व बैंक ने बैंगलोर के श्री राघवेन्द्र सहकारी बैंक में जमा खातों से धन निकासी की सीमा तय कर दी और निर्देश दिया कि इस बैंक का कोई भी ग्राहक अगले आदेश तक अपने खाते से 35,000 रुपये से अधिक की धनराशि नहीं निकाल सकता। साथ ही बैंक के नये निवेशों की इजाजत पर 6 महीने के लिए रोक लगा दी। इस बैंक की बैंगलोर में 8 शाखाएँ हैं। 31 मार्च 2018 तक इसके सदस्यों की संख्या 8614 थी, जिन्होंने बैंक में कुल 52 करोड़ रुपये का निवेश किया था। बैंक में कुल जमा राशि 1566 करोड़ रुपये थी, जबकि इसके द्वारा 1150 करोड़ रुपये के कर्ज बाँटे जा चुके थे। इसमें से 372 करोड़ रुपये एनपीए यानी बट्टे खाते में जा चुके हैं जो केवल 62 खाता धारकों का कर्ज है। एनपीए की यह रकम निवेश पूँजी के 7 गुने से भी अधिक है तथा बैंक में जमा कुल रकम की एक चौथाई है। बैंक के 80 प्रतिशत ग्राहक वरिष्ठ नागरिक हैं, जिन्होंने अपनी जिन्दगी भर की बचत बैंक में जमा की थी जिसके ब्याज से अपने बुढ़ापे को आसान बनाना चाह रहे थे, आज वह दूर की कौड़ी बन गयी है।

जब बैंक ग्राहकों ने शोर-शराबा और शिकायतें की तो बैंक के वरिष्ठ अधिकारियों ने पाई-पाई लौटाने का आश्वासन देकर ग्राहकों को टरका दिया। बीजेपी के एक सांसद ने भी ट्वीट द्वारा ग्राहकों को खोखली सांत्वना दी। मौजूदा हालत यह है कि बैंक किसी भी ग्राहक की रकम नहीं लोटा सकता। बैंक लगभग दिवालिया हो चुका है। यह मुम्बई के पंजाब और महारास्ट्र सहकारी बैंक घोटाले की अगली कड़ी है।

आरबीआई ने बताया की बैंक ने साल 2018-19 के ऑडिट किये हुए वित्तीय खाते घोषित नहीं किये थे। यह कई सालों से इन कर्जों की 'एवरग्रीनिंग' कर रहा था यानी जो कर्जदार ब्याज या किश्त जमा नहीं कर पाता उसे दूसरा कर्ज देकर उससे ब्याज या किश्त को जमा करा लिया जाता था, जिससे कर्ज के एनपीए में जाने का पता न लगे। इसी तरह से पीएमसी बैंक ने भी हजारों लोगों की जिन्दगी भर की जमा पूँजी एक कम्पनी को कर्ज में उठा दी थी। वह कम्पनी बर्बाद हो गयी, जिसकी वजह से हजारों लोग कंगाली की हालत में आ गये और 10 से ज्यादा बैंक खाता धारकों की जान चली गयी। पीएमसी बैंक की 6 राज्यों में 137 शाखाएँ थीं, जिनमें 1814 कर्मचारी काम करते थे। इसे देश के शीर्ष 10 सहकारी बैंको में गिना जाता था। इस बैंक में जमा कुल धनराशि 8880 करोड़ में से 6500 करोड़ रुपये का कर्ज रियल एस्टेट के व्यापार में लगी एक कम्पनी एचडीआईएल को दिया गया था। 21 हजार से ज्यादा फर्जी खाते खोलकर यह कर्ज दिया गया। इतना सब कुछ होने के बावजूद भारतीय रिजर्व बैंक के गवर्नर शक्तिकान्त दास ने दावा किया कि भारतीय बैंकिंग व्यवस्था मजबूत और स्थिर है। पीएमसी बैंक जैसे किसी एक काण्ड की वजह से पूरी बैंकिंग व्यवस्था को नहीं आकना चाहिए। लेकिन गवर्नर का दावा कितना सही था उसकी असलियत श्री राघवेन्द्र सहकारी बैंक घोटाले से सामने आ गयी।

इन दोनों ही मामलों से सरकारी बैंकों पर निजी कम्पनियों के साथ साँठ-गाँठ और उन्हें अपने मुनाफे के लिए इस्तेमाल किये जाने की हकीकत का पता चलता है। पीएमसी बैंक के मामले में वित्त मंत्री ने अपनी जिम्मेदारियों से पल्ला झाड़ते हुए कहा था कि यह मामला आरबीआई के आधीन है। इसमें वे कुछ नहीं कर सकते। श्री राघवेन्द्र सहकारी बैंक के मामले में भी सरकार का रवैया हवाई आश्वासनों तथा सांत्वना तक ही सीमित है। बैंकों में जनता की कमाई को लूटने का यह खेल व्यवस्थित तरीके से वर्षों से खेला जा रहा है। निजी कम्पनियों का बैंकों से कर्ज के नाम पर इतनी बड़ी रकम हासिल करना बिना बैंक अधिकारियों, शासन-प्रशासन की मिलीभगत के असम्भव है।

वास्तविकता यह है कि ये बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ अकसर कर्ज वापस नहीं करती हैं, बल्कि सरकारों व बैंकों के साथ साँठ-गाँठ के चलते हर बार ज्यादा से ज्यादा कर्ज लेती रहती हैं। यह बात आरबीआई के आकड़ों से अधिक स्पष्ट हो जाती है, जिसके अनुसार पिछले एक साल में 25 सहकारी बैंकों के लेन-देन में भारी अनियमिताएँ पायी गयीं।

-- सतेन्द्र सिद्धार्थ

देश में राजद्रोह के बढ़ते मुकदमे

फ्रांस के महान दार्शनिक वोल्तेयर ने कहा था-- "मैं जानता हूँ कि आपकी बात गलत है, लेकिन आपका बोलने का अधिकार सुरक्षित रहे, इसके लिए मैं अपनी जान दे सकता हूँ।" फ्रांस में सामन्तवाद के पतन के समय के शासक "लुई चौदहवें" का यह कहना कि "मैं ही राज्य हूँ" इस बात का प्रतीक था कि कोई भी व्यक्ति न तो राजा के खिलाफ कुछ बोल सकता है और न ही कुछ कर सकता है। ऐसा करना राजद्रोह की श्रेणी में आएगा। उसी तर्ज पर 1837 में लार्ड मैकाले ने भारतीय दण्ड संहिता तैयार की। 1857 के विद्रोह के बाद किसी भी विद्रोह की सम्भावना को खत्म करने के लिए 1870 में इसी दण्ड संहिता में धारा 124ए को राजद्रोह के कानून के रूप में शामिल किया गया। इस कानून में लिखा गया कि सरकार के प्रति किसी भी प्रकार की असहमति राजद्रोह के दायरे में आएगी।

इस कानून का पहला मामला 1891 में सामने आया, जब सरकार से असहमति जताने वाली खबर छापने पर एक अखबार के सम्पादक पर राजद्रोह का मुकदमा चला। इसके बाद गोरी सरकार ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को दबाने के लिए इसका जमकर इस्तेमाल किया। महात्मा गाँधी, बाल गंगाधर तिलक से लेकर भगतसिंह जैसे क्रान्तिकारियों पर भी इस कानून के तहत मुकदमे चलाये गये। गाँधी जी ने इस कानून को, सरकार द्वारा नागरिक आजादी को दबाने के लिए लाये गये सभी राजनीतिक कानूनों का राजकुमार कहा था, तो शहीद भगतसिंह और उनके साथियों का कहना था कि हमारे ऊपर राजद्रोह का मुकदमा चलाना इसलिए गलत है, क्योंकि हमने केवल गोरी सरकार के खिलाफ ही युद्ध नहीं छेड़ा है, बल्कि हमारा युद्ध समस्त पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ है। गोरी सरकार अपने खिलाफ उठने वाली हर असहमति को इस कानून के जरिये कुचल देना चाहती थी।

आजादी के बाद भारतीय सरकारों ने न केवल इस काले कानून को बरकरार रखा, बल्कि अभिव्यक्ति की आजादी को कुचलने में इसका इस्तेमाल किया और कर रही हैं। आजाद भारत में राजद्रोह का पहला मुकदमा 1962 में "केदारनाथ सिंह बनाम बिहार राज्य" का दर्ज हुआ था। तब से लेकर हाल ही में नागरिकता संशोधन अधिनियम (सीएए) और राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर (एनआरसी) के विरोधियों पर राजद्रोह लगाने तक की फेहरिस्त बहुत लम्बी है।

आजाद भारत की सरकारें अपने खिलाफ उठने वाली हर असहमति को राजद्रोह करार देती है और राजद्रोह को देशद्रोह के रूप में प्रचारित करके जनता की सहानुभूति भी बटोर लेती है। जबकि असल में राजद्रोह और देशद्रोह में काफी फर्क है। राजद्रोह का मतलब है स्थापित सरकार को नकारना और उससे असहमति जताना, जबकि देशद्रोह का मतलब है अपने देश को नुकसान पहुँचाने वाले कार्य करना। जाहिर है कि देश का मतलब किसी पार्टी विशेष की सरकार नहीं होता है, बल्कि वहाँ के किसान, मजदूर, आदिवासी, छात्र, नौजवान, आदि से होता है। कई बार देश की रक्षा करने के लिए सरकार की गलत नीतियों का विरोध करना अनिवार्य हो जाता है। इससे साफ है कि राजद्रोह, यानी सरकार का विरोध करने में कोई बुराई नहीं, जबकि देशद्रोह करना अक्षम्य है। असहमति दर्ज कराना लोकतंत्र की बुनियाद है। इस मायने में राजद्रोह का कानून लोकतंत्र के ही खिलाफ है।

पिछले पाँच-छह वर्षों में यह कानून सरकारों का ज्यादा ही चहेता बन गया है। गाँव के ग्रामीण हों, आदिवासी हों, छात्र हों, बुद्धिजीवी हों, सब पर वर्तमान केन्द्र सरकार और राज्य सरकारें यह काला कानून थोप रही हैं। तमिलनाडु के तूतीकोरिन में पूर गाँव पर केवल इसलिए राजद्रोह का कानून लगाया गया, क्योंकि वे अपने गाँव में लगने वाले परमाणु संयंत्र का विरोध कर रहे थे। 2014 में विस्थापन का विरोध कर रहे झारखण्ड के आदिवासियों पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। जून 2018 में पश्चिमी बिहार के रोहतास जिले में एक नौजवान पर केवल इसलिए राजद्रोह का मुकदमा लगा दिया गया, क्योंकि वह एक विशेष गाने पर डान्स कर रहा था, जिसमें "मुजाहिद" शब्द का इस्तेमाल हुआ था। अक्टूबर 2014 में केरल के 25 वर्षीय दर्शनशास्त्र के छात्र को केवल इसलिए गिरफ्तार किया गया, क्योंकि वह सिनेमा हॉल में राष्ट्रगान के लिए खड़ा नहीं हुआ। उस पर भी राजद्रोह की धारा 124ए लगायी गयी।

नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) ने राजद्रोह के सम्बन्ध में 2014 से आँकड़े जुटाने शुरू किये। एनसीआरबी के अनुसार, 2014 में 47, 2015 में 30 और 2016 में 35 मुकदमे राजद्रोह से सम्बन्धित दर्ज हुए। इन दिनों तो जैसे वर्तमान सरकार हर नागरिक को राजद्रोही साबित करने पर तुली हुई है। देश में बढ़ती मॉब लिंचिंग की घटनाओं को रोकने के लिए माननीय प्रधानमंत्री को चिट्ठी लिखने वाले 44 बुद्धिजीवियों पर सरकार ने

राजद्रोह की धारा 124ए लगा दी। भारत में अवैध रूप से रह रहे गैर-मुस्लिम शरणार्थियों को नागरिकता देने के लिए लाये गये अधिनियम "सीएए" का विरोध कर रहा हर व्यक्ति आज सरकार की नजर में देशद्रोही है, चाहे वह किसी भी धर्म का हो। सत्ता के शीर्ष पर बैठे लोग भी बेहूदा बयानबाजी कर रहे हैं। प्रधानमंत्री मोदी का कहना है कि देशद्रोही कपड़ों से पहचान लिये जाएँगे, तो उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ का कहना है कि आन्दोलन के दौरान किसी भी प्रकार से आजादी का नारा लगाना देशद्रोह है। सरकार धारा तो लगाती है राजद्रोह की, जबकि उसे प्रचारित करती है देशद्रोह के रूप में और खुद को स्वानाम धन्य 'देश भक्त' घोषित करती है। सरकार का यही षड्यंत्र जनता में भ्रामक नजरिया पैदा करता है।

साल 2018 में विधि आयोग ने धारा 124ए के सम्बन्ध में एक परामर्श पत्र प्रस्तुत करते हुए कहा कि "सरकार के प्रति असहमति की अभिव्यक्ति को राजद्रोह नहीं माना जा सकता" और यह सवाल भी किया कि "भारत में राजद्रोह के कानून को क्यों बरकरार रखना चाहिए, जबकि इसकी शुरुआत अंग्रेजों ने भारतीयों के दमन के लिए की थी।"

ऑस्ट्रेलिया में इस कानून का दायरा सीमित कर दिया गया है, न्यूजीलैण्ड में 2007 में इसे समाप्त किया जा चुका है। खुद अंग्रेज 2009 में इस कानून को अपने देश में खत्म कर चुके हैं, जबकि भारत में उनके बनाये इस काले कानून का जैसे पुनर्जन्म हो रहा हो।

आज की केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों ने राजद्रोह के कानून के जरिये भारतीय जनता, जिसमें छात्र और बुद्धिजीवी भी शामिल हैं, उनके खिलाफ उसी तरह का युद्ध छेड़ दिया है जैसा अंग्रेजों ने भारतीयों के खिलाफ छेड़ा था। अंग्रेजों को भारतीय जनता का हर आन्दोलन और असहमति की हर आवाज देशद्रोह लगती थी, वर्तमान सरकारों को भी ऐसा ही लगता है। लेकिन क्या वजह है, कि सरकार हर असहमति को देशद्रोह के रूप में प्रचारित कर रही है? इसकी वजह साफ है। देश में गहराते आर्थिक संकट से जनता का ध्यान भटकाना और अपनी गलत नीतियों के खिलाफ उठने वाली आवाज को दबाना। पिछले कई सालों से भारतीय अर्थव्यवस्था की सेहत लगातार गिरती जा रही है। हर राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय रेटिंग एजेन्सी विकास दर में भारी गिरावट दर्शा रही है। और इस गिरावट का असर आम जन जीवन में बढ़ती महँगाई, बेरोजगारी, छोटे और लघु उद्योगों तथा किसानों की तबाही के रूप में साफ महसूस हो रही है। लेकिन सरकार की कोशिश है कि लोग इन मुद्दों को लेकर आन्दोलन करें, इससे पहले ही देश की ऐसी नब्ज छेड़ी जाये जिससे लोग जल्दी से गुमराह हो सकें। और वो नब्ज है-- नागरिकता संशोधन अधिनियम जैसे कानून, राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर जैसे अभियान और अपने विरोधियों पर देशद्रोह यानी राजद्रोह के मुकदमे। जितनी तत्परता सरकार तमाम असहमतियों को देशद्रोही साबित करने और अभिव्यक्ति की आजादी पर लगाम कसने में दिखा रही है, अगर उतनी ही तत्परता जरूरी वस्तुओं की कीमतों और बढ़ती बेरोजगारी पर नियंत्रण करने में लगाती, तो सच में आम जनता को कुछ राहत मिलती। सरकार की प्राथमिकता कुछ और है। लेकिन वह दिन भी दूर नहीं, जब जनता अपनी आँखों से भ्रम के पर्दे उतार फेंकेगी और राजद्रोह के काले कानून को नेस्तनाबूद करने के लिए सरकार को मजबूर कर देगी।

-- विशाल

मेजर ध्यान चन्द ने 'हे हिटलर' कहने से किया था इनकार

हॉकी के महान खिलाड़ी मेजर ध्यान चन्द को देश-दुनिया के लोग बहुत ही सम्मान की नजर से देखते हैं।

उनकी जिन्दगी की एक घटना उनके प्रति सम्मान को बढ़ने वाली है। उन्होंने 1936 के बर्लिन हॉकी ओलम्पिक में वहाँ के भरे स्टेडियम में हाथ उठाकर 'हे हिटलर' कहने से इनकार किया था और दुनिया के सामने गुलाम भारत की मान रखी थी।

यह बात और ऐसी ही महत्वपूर्ण जानकारी बोरिया मजूमदार और नलिन मेहता की किताब 'ड्रीम्स ऑफ अ मिलियन इण्डिया एण्ड द ओलम्पिक गेम्स' नामक किताब में है

साम्राज्यवादियों के पिट्ठू और फासीवाद के नक्शेकदम पर चलनेवाले शासकों के इस दौर में यह घटना बहुत ज्यादा अहमियत रखती है।

इण्टरनेट सेवाएँ बन्द करना कितना लोकतांत्रिक है

4 अगस्त 2019 से कश्मीर में धारा 370 के खात्मे के बाद इण्टरनेट सेवाएँ 174 दिनों तक बन्द कर दी गयीं। इतने लम्बे समय तक इण्टरनेट बन्द रहने की यह पहली और एकमात्र घटना है। सीएए के प्रदर्शन के बाद भी कई राज्यों में इण्टरनेट सेवाओं को बन्द किया गया। इस तरह भारत दुनिया भर में इण्टरनेट को बन्द करने के मामले में पहले स्थान पर पहुँच गया है। देश में सरकार विरोधी किसी भी आन्दोलन में इण्टरनेट बन्द कर दिया जाना सरकार के लिए एक जरूरी कदम जैसा हो गया है। यह सरकार की धूमिल होती छवि को भी दिखाता है। टॉप-टेन-वीपीएन वेबसाइट के अनुसार भारत में इण्टरनेट बन्द करने के लिए 100 से ज्यादा लिखित आदेश जारी किये गये। इससे लगभग 9,100 करोड़ रुपये का आर्थिक नुकसान हुआ। दूरसंचार कम्पनियों के शीर्ष संगठन सीओएआई (सेलुलर ऑपरेटर्स एसोसिएशन ऑफ इण्डिया) के अनुसार एक घण्टा इण्टरनेट बन्द होने से दूरसंचार कम्पनियों को कुल 2.45 करोड़ रुपये का घाटा होता है। इसने सरकार को चेताया भी कि इस प्रकार के मामले में सबसे पहले इण्टरनेट को बन्द करना सही कार्रवाई नहीं है।

सरकार द्वारा इण्टरनेट सेवाओं को आन्दोलन के दौरान बन्द करने का असली मकसद होता है-- जनता के बीच सूचना और संचार का माध्यम खत्म कर दिया जाये, जिससे उनके बीच एकजुटता न बन पाये। हम जानते है कि पिछले दस वर्षों से देश में फेसबुक, व्हाट्सएप और ट्वीटर जैसे सोशल मीडिया एप पर लोगों की सक्रियता बहुत तेजी से बढ़ी है। इन सभी की अपनी नियम और शर्तें होती हैं। ये जब चाहे तब किसी भी सदस्य पर प्रतिबन्ध लगा सकती हैं या उन्हें अपनी वेबसाइट से बाहर निकाल सकती हैं। जैसे-- फेसबुक पर कई बार सरकार विरोधी पोस्ट लिखने पर व्यक्ति को ब्लॉक कर दिया जाता है, अगर कुछ लोग उसकी शिकायत फेसबुक एडमिन से कर दें। इसी ढाँचे में हम अपनी बात कहने को मजबूर हैं। मुनाफे पर आधारित निजी कम्पनियाँ इन वेबसाइटों को चलाती हैं, जिनकी आर्थिक हैसियत कई देशों से भी बड़ी है। फेसबुक दुनिया की दस बड़ी कम्पनियों में से एक है। अपने निजी हितों को पूरा करना इनकी प्राथमिकता होती है तथा सरकार के साथ हर मामले में खड़ी होती हैं। ये अपने मुनाफे के लिए घोर से घोर जनविरोधी नियमों और शर्तों को लागू करने को तैयार रहती हैं। ये अपने उपभोक्ताओं के गोपनीय और व्यक्तिगत डेटा को बेचती हैं और उसकी निगरानी करती हैं। इसे लेकर इनके ऊपर विभिन्न न्यायालयों में केस दर्ज हैं और मुकदमे भी चल रहे हैं। इसलिए इन्हें लोकतंत्र का प्रहरी समझना एक भूल होगी।

इण्टरनेट का चरित्र विरोधाभाषी है, जिसे समझना आवश्यक है। यह लोगों को जोड़ता भी है और अगर सावधानी से इसका इस्तेमाल न किया जाये तो यह उनके बीच दरार भी पैदा करता है। इसलिए यह संचार और सूचना का सशक्त माध्यम है। इण्टरनेट के जरिये सूचनाओं को कम समय में ज्यादा से ज्यादा लोगों तक आसानी से पहुँचाया जा सकता है। इसलिए आन्दोलन के दौरान लोग एक-दूसरे से फोटो, लेख और वीडियो साझा करते हैं, जिससे लोगों तक सही सूचना तेजी से पहुँच जाती है। ऐसे समय इसका महत्त्व और बढ़ जाता है, जब मुख्य धारा की पूरी मीडिया पर सरकार का वर्चस्व है और वे सभी सरकार के सुर में सुर मिलाकर गाते हैं। उदाहरण के लिए जामिया विश्वविद्यालय के मामले में जब पुलिस ने छात्रों पर बर्बरता से हमला किया, उनके हॉस्टल और लाइब्रेरी में घुसकर उन्हें पीटा गया और तोड़-फोड़ की गयी, तब सोशल वेबसाइट के माध्यम से लोगों को इस सच्चाई का पता चला। जब प्रशासन की शह पर नकाबपोशों ने जेएनयू के छात्रों पर हमला किया, तो वेबसाइट के माध्यम से उपलब्ध तस्वीरों से सही स्थिति सामने आ पायी। कई बार सरकार के खिलाफ सोशल मीडिया पर लिखने के चलते राजद्रोह का मुकदमा भी दर्ज किया गया।

ध्यान देने वाली बात यह है कि सोशल मीडिया के जरिये प्रधानमंत्री भी अपने विचारों तथा कामों का प्रचार करते हैं और लगभग सभी पार्टियों के नेता इस प्लेटफार्म पर सक्रिय हैं। लेकिन जब जनता इनका इस्तेमाल अपने विरोध प्रदर्शन के लिए करती है तो सरकार उसे बन्द कर देती है। क्या सरकार का यह भेदभावपूर्ण व्यवहार लोकतांत्रिक है?

व्यवस्था द्वारा नियंत्रित और संचालित इण्टरनेट लोगों को एक सीमित दायरे में बात कहने की आजादी देता है। लेकिन यह सीमित साधन भी बन्द कर दिया जायेगा, तो लोग अपनी बात कहाँ रखेंगे? इसलिए धरातल पर व्यक्ति-व्यक्ति के बीच जीवन्त सम्पर्क का स्थान सोशल मीडिया और इण्टरनेट नहीं ले सकते। ऐसे में सरकार विरोधी ताकतों को जनता से जीवन्त सम्पर्क बनाना ही होगा। उनके सुख-दुख में शामिल होना होगा। जनता के बीच सच्चे लोकतंत्र के लिए संघर्ष करना होगा। तभी जाकर लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित समाज का निर्माण होगा।

-- आशुतोष कुमार

दिल्ली की अनाज मण्डी अग्निकाण्ड से उपजे सवाल

8 दिसम्बर 2019 की सुबह दिल्ली की अनाज मण्डी के पास एक कारखाने में हुए अग्निकाण्ड ने सभी दिल्लीवासियों को स्तब्ध कर दिया। यह हादसा इतना भयावह था कि इसने 43 मजदूरों की जिन्दगी निगल ली और 63 मजदूरों ने जैसे-तैसे यहाँ तक कि छत से कूदकर अपनी जान बचायी। आग पर काबू पाने के लिए आये दमकल कर्मचारियों में से एक नौजवान कर्मचारी की भी मौत हो गयी।

इस हादसे में दो सगे भाइयों को भी जिन्दगी से हाथ धोना पड़ा, जिन पर अपनी चार बहनों की शादी करने की जिम्मेदारी थी। उनके पिता की शारीरिक स्थिति ऐसी नहीं है कि वे घर खर्च के लिए काम कर सकें। इसका सहज अन्दाजा लगाया जा सकता कि इस परिवार पर क्या गुजर रही होगी। इसी हादसे में जान गँवाने वाले एक नौजवान मजदूर की कुछ समय पहले ही शादी हुई थी। उसकी पत्नी ने हाल ही में एक बच्चे को जन्म दिया था। वह फैक्ट्री से अपना काम खत्म करके अपने बच्चे से मिलने के लिए जाने वाला था लेकिन किसी को क्या पता कि वहाँ उसकी मौत उसका इन्तजार कर रही था।

इस हादसे के दौरान दो दोस्तों की फोन पर बातचीत की एक बड़ी मार्मिक रिकोर्डिंग सामने आयी है। आग से जल चुके मुशर्रफ अली ने अपने दोस्त मोनू अग्रवाल को फोन किया और कहा कि दोस्त, मैं मरने वाला हूँ, यहाँ आग लग गयी है। मेरे बाल-बच्चों का ध्यान रखना। मोनू ने परेशान आवाज में कहा कि फायर ब्रिगेड वालों को फोन करो। मुशर्रफ ने दम घुटती आवाज में कहा है कि अब कुछ नहीं हो सकता है, भाई, मैं खत्म हो जाऊँगा... पूरी रिकोर्डिंग में मजदूरों के चीखने-चिल्लाने की आवाजें सुनाई देती हैं। यह रिकोर्डिंग हिन्दू-मुस्लिम भाईचारे को तोड़ने वालों की नजरों को भी शर्मसार कर देती है।

उत्तरी दिल्ली नगर निगम ने इस हादसे से एक सप्ताह पहले ही इस इलाके का सर्वे करवाया था। उनके सर्वे के अनुसार वहाँ कोई कारखाना ही नहीं था, जबकि यह कारखाना 10 साल से चल रहा है। यह खबर उत्तरी दिल्ली में चल रहे किसी गोरखधन्धे की ओर इशारा करती है। दिल्ली सरकार ने इस हादसे की जाँच कराने के आदेश दे दिये हैं। हम सभी इस बात से वाकिफ हैं कि देश भर में ऐसी घटनाएँ लगातार घट रही हैं और हर बार सरकार जाँच कराने की घोषणा करके अपनी जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ लेती है। ज्यादा हुआ तो हादसे में मरनेवालों के परिजनों को कुछ मुआवजा देकर मामले को रफा-दफा कर दिया जाता है। लेकिन फैक्ट्री किन हालात में चलायी जा रही थी? वहाँ सुरक्षा के पूरे उपाय क्यों नहीं किये गये थे? सरकार इन सवालों का जवाब क्यों नहीं देती?

विधि एंव न्याय मंत्रालय की एक रिपोर्ट के अनुसार, साल 2015 तक, ऐसे मामलों के 3.5 करोड़ से ज्यादा मुकदमे ऐसे थे, जिन पर अब तक कोई कार्रवाई नहीं हुई है या फैसला नहीं आया है। इसमें ऐसे मुकदमे सबसे ज्यादा स्थानीय न्यायलयों के पास लम्बित हैं। इसमें 55 से 60 प्रतिशत आरोपी बरी हो जाते हैं। मजदूरों की आर्थिक हालत उन्हें कोर्ट-कचहरी का चक्कर लगाने नहीं देती। इसलिए उन्हें मजबूरी में हथियार डाल देना पड़ता है। लोग व्यवस्था पर सवाल उठाने के बजाय मजदूरों को ही जिम्मेदार मान लेते हैं कि उन्होंने न्याय की लड़ाई नहीं लड़ी और मजदूरों को भी ऐसा ही लगता है, उनमें न्याय का भ्रम बना रहता है।

ऐसी कम्पनियों में मजदूरों से मनमाने तरीके से काम लिया जाता है। वहाँ कोई श्रम कानून लागू नहीं होता। पुराने श्रम कानून में 8 घण्टे का कार्य दिवस था, महिला मजदूरों से रात में काम लेने की मनाही थी। समुचित वेतन-भत्ते, दुर्घटना से सुरक्षा और इलाज की सुविधा, अवकाश का अधिकार, एक हद तक रोजगार सुरक्षा, विरोध-प्रदर्शन का अधिकार आदि सुविधाएँ मिली थीं। मजदूरों ने अपने संघर्षों से इन्हें हासिल किया था। लेकिन मुठ्ठी भर पूँजीपतियों के फायदे के लिए और उदारीकरण की नीतियों के चलते ऐसे श्रम कानूनों को खत्म कर दिया गया।

जब हम बाजार से कोई सामान खरीदते हैं, तब हमें यह अहसास नहीं होता कि इन सामानों को बनाने वाले मजदूर किन हालात में रहते हैं। दिल्ली के जिस कारखाने में आग लगी थी, वहाँ के मजदूर जैकेट, स्कूल बैग और प्लास्टिक के खिलौने बनाते थे। मजदूर 10-12 घण्टे जीतोड़ मेहनत करते थे। वे वहीं खाना बनाते, खाते और सो जाते। अगर मजदूर वर्ग एक भी दिन काम बन्द कर दे, तो व्यवस्था का पहिया जाम हो जायेगा। यहाँ कार्यरत ज्यादातर मजदूरों को अपने बीवी-बच्चों से महीनों दूर रहना पड़ता था। उन्हें हर महीने 8 से 14 हजार रुपये तक वेतन मिलता था, इससे मुश्किल से ही उनके परिवार का खर्च चलता था। लेकिन परिवार से अब वह सहारा भी छिन चुका है।

कई बार ऐसे बचकाने सवाल पूछ लिए जाते हैं कि मजदूर इतनी बुरी जगह काम ही क्यों करते हैं? या इन गैर-कानूनी कम्पनियों पर कार्रवाई क्यों नहीं होती। पहली बात, खुद मजदूर ही नहीं चाहते कि गली-मुहल्लों में चलने वाली इन छोटी कम्पनियों

को बन्द किया जाये, क्योंकि बेरोजगारी के इस दौर में उनकी रोजी-रोटी का वही एकमात्र सहारा होती हैं। दुर्घटना के बाद मीडिया ऐसी छोटी कम्पनियों को खलनायक की तरह पेश करता है। लेकिन सच यह है कि बड़ी कम्पनियों के सामने होड़ में ये कम्पनियाँ टिक नहीं सकतीं। उदारीकरण के बाद देशी-विदेशी बड़ी कम्पनियों के आगे इन्हें असहाय छोड़ दिया गया, जबकि ज्यादातर मजदूरों की जीविका इन पर निर्भर होती है। छोटी कम्पनियाँ बाजार में टिकने के लिए सुरक्षा सम्बन्धी उपायों में कटौती करती हैं और मजदूरों का बहुत अधिक शोषण करती हैं। इसी के चलते अपने कम गुणवत्ता वाले माल को कम कीमत पर बाजार में बेच पाती हैं। लेकिन सुरक्षा में कटौती इन्हें बड़ी दुर्घटना की ओर ले जाती है। दिल्ली जैसे अग्निकाण्डों की यही असली वजह है। लुटेरी देशी-विदेशी बड़ी कम्पनियों पर लगाम कसे बिना इस समस्या को जड़ से खत्म नहीं किया जा सकता है।

-- ललित कुमार

पेज 50 का शेष...

यह तो सिर्फ दो-चार दिन का लेखा-जोखा है। जबकि सोशल मीडिया पर ऐसी खबरों की बाढ़ आयी रहती है। व्हाट्सएप को तो झूठ की यूनिवर्सिटी के तौर पर स्वीकार कर लिया गया है। इससे जनता के अलग-अलग तबके और सम्प्रदाय के बीच के दूरी बढ़ रही है। लोगों के दिमाग गलत आँकड़े और अफवाह से भरे रहते हैं। इसका सबसे ज्यादा फायदा उन संगठनों और राजनीतिक पार्टियों को मिलता है जो लोगों के बीच तरह-तरह के भेदभाव फैलाकर अपना वोट बैंक बढ़ाते हैं। सबसे ज्यादा नुकसान होता है संविधान में निहित लोकतांत्रिक मूल्यों और देश के भविष्य का। क्योंकि ये मूल्य सर्वधर्म समभाव, धर्मनिरपेक्षता और वैज्ञानिक नजरिया पर आधारित भारत के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करते हैं। यह हमारा दुर्भाग्य है कि ये मूल्य सिर्फ पवित्र किताब तक सीमित रहे। हमारे समाज में इनकी बानगी तक नहीं दिखती। उलटे अब इन मूल्यों को गाली का पर्याय बनाया जा रहा है।

मजदूरों की देशव्यापी हड़ताल का समर्थन किया किसानों और छात्रों ने

8 जनवरी को देशभर में श्रम कानूनों और जनहित में बनी नीतियों में बदलाव के खिलाफ मजदूर यूनियनों ने एक दिन का हड़ताल की। पहले भी मजदूर यूनियनों ने देशव्यापी हड़तालें की हैं, पर इस बार 8 जनवरी की हड़ताल कई मामलों में अलग थी। दस ट्रेड यूनियनों ने मिलकर इस हड़ताल का आह्वान किया, जिसमें करीब 25 करोड़ लोगों के शामिल होने का अनुमान है। यह देश की अब तक की सबसे बड़ी हड़ताल बनी, क्योंकि केन्द्र सरकार ने छात्रों और विश्वविद्यालयों को लेकर भी तानाशाही रवैया अपनाया है, किसानों की भी हालत पस्त है, इसलिए इस हड़ताल का सबसे खूबसूरत पहलू यह रहा कि इसके समर्थन में 200 ऐसे संगठनों ने हिस्सा लिया जो मजदूर वर्ग के संगठन नहीं थे। ये छात्र और किसानों के संगठन थे, जो दिल्ली की सड़कों पर मजदूरों के साथ उनके अधिकारों के लिए मैदान में उतरे। जहाँ बहुमत से आयी केन्द्र सरकार अपने जनविरोधी फैसलों को लेकर अडिग है, वहीं विरोध का स्वर भी ऊँचा होता जा रहा है।

इस हड़ताल की मुख्य माँगें थीं-- सरकारी कम्पनियों का निजीकरण बन्द करो। सभी को सम्मानजनक जीवन यापन करने लायक न्यूनतम तनख्वाह और पेंशन दो। यूनियन बनाने का अधिकार दो। मजदूर हितों की सुरक्षा करो। केन्द्र सरकार हिन्दू राष्ट्रवाद की आड़ में नवउदारवादी नीतियों को बढ़ावा दे रही है। वह ऐसी आर्थिक नीतियाँ ला रही है जो देशी-विदेशी पूँजीपतियों की तरफदारी करती हैं और मजदूरों के शोषण को बढ़ावा देती हैं। इसके चलते रिकॉर्ड तोड़ महँगाई, बेरोजगारी और बेलगाम शोषण से मजदूरों की जिन्दगी दूभर हो गयी है।

मजदूर, छात्र और किसान तीनों मिलकर देश की 70 प्रतिशत आबादी से भी ज्यादा हैं। 1990 के बाद से ही सरकार ने अपने चहेते पूँजीपतियों को मालामाल करने के लिए श्रम कानूनों में बदलाव किये, शिक्षा के बजट में कटौती की और किसानों को मिलने वाली सबसिडी को छीना। इसी का नतीजा है कि आज शिक्षा से गरीब परिवार के बच्चे वंचित हैं। खेती घाटे का सौदा बन गयी है। 90 प्रतिशत से अधिक असंगठित क्षेत्र के मजदूर 15 घण्टे काम करके भी सम्मानजनक जिन्दगी नहीं जी पा रहे हैं। अच्छे दिन दूर-दूर तक नजर नहीं आ रहे हैं। मजदूरों, किसानों और छात्रों का एकजुट संघर्ष देश की हालत को बदल सकता है बशर्ते वह घिसीपिटी कार्रवाइयों से आगे संघर्षों की शुरुआत करें।

-- राजेश कुमार

क्या यौन हिंसा को पुलिस हिंसा से खत्म किया जा सकता है?

हैदराबाद में एक पशुचिकित्सक महिला डॉक्टर के साथ सामूहिक बलात्कार करने के बाद उसको जला दिया गया। इस घटना को लेकर पूरे देश के लोगों में एक आक्रोश व्याप्त था और बलात्कारियों के लिए फाँसी की माँग को लेकर लोग सड़कों पर आ गये। पुलिस ने आनन-फानन में चारों आरोपियों को गिरफ्तार किया और उन्हें गोली मारकर बताया कि वे मुठभेड़ में मारे गये। टीवी चैनलों, अखबारों, सोशल मीडिया पर प्रचारित किया गया कि पीड़िता को सही इनसाफ मिला और पुलिस इंस्पेक्टर की खूब वाह-वाही हुई। क्या हत्या के बदले हत्या वाली इस प्रक्रिया को ठीक कहा जा सकता है? ये तो कबीलाई व्यवस्था-- खून के बदले खून की कार्रवाई है। भारतीय संविधान के अनुसार सजा देने का काम न्यायालय का है। पुलिस का काम उस न्यायालय की प्रक्रिया में सहयोग करना है। यदि पुलिस सजा देने लगेगी तो बिना आरोप सिद्ध हुए भी सजा देगी। कई मामलों में ऐसा भी होता है कि आरोप गलत होता है, जिसमें सही जाँच के बाद आरोपी को छोड़ दिया जाता है। कई बार गलत व्यक्ति को फँसा दिया जाता है तो कई बार ऊँचे पद और पुरस्कार के लालच में पुलिसवाले निर्दोष लोगों को फर्जी एनकाउण्टर में मार देते हैं।

हालाँकि हमारे देश में अदालती कार्रवाई की बहुत ही लम्बी प्रक्रिया है। फैसला आने और आरोपी को सजा मिलने में कई वर्ष लग जाते हैं। लेकिन इसका विकल्प पुलिस एनकाउण्टर नहीं हो सकता।

हमारे देश में बलात्कार की पीड़िता को न्याय मिल पायेगा या नहीं ये इस बात पर निर्भर करता है कि बलात्कार पीड़िता किस सामाजिक आर्थिक हैसियत की है और बलात्कारी किस सामाजिक आर्थिक हैसियत का है। अगर बलात्कारी ऊँची हैसियत का है और पीड़िता निम्न तबके की है तो ऐसे मामलों में पीड़िता को इनसाफ नहीं मिल पाता और बलात्कारी बरी हो जाता है, जैसा कि चिन्मयानन्द के मामले में हुआ। इसमें तो उलटे पीड़िता को ही फँसाया गया और सेंगर ने तो पीड़िता के परिवार को ही खत्म करवा दिया। यानी बलात्कारी दबंग हो, उसकी राजनीति में दखल हो तो पीड़िता को न्याय मिलने की उम्मीद न के बराबर है। अगर पीड़िता ऊँची हैसियत की है और बलात्कारी निम्न तबके का है तो ऐसे में पीड़िता को न्याय मिल जाता है, बलात्कारी को कानून के जरिये सजा मिल जाती है। जैसा निर्भया के मामले में हुआ।

साम्प्रदायिक राजनीति के पैरोकार बलात्कार की घटना को हिन्दू-मुस्लिम में बाँटने की कोशिश करते हैं। अगर बलात्कारी हिन्दू है या बीजेपी से ताल्लुक रखता है और पीड़िता मुस्लिम या दलित है तो बलात्कारी के समर्थन में बीजेपी समर्थक रैलियाँ तक निकालते हैं, जैसा कठुआ में आसिफा के मामले में किया गया। उन्नाव मामले में कुलदीप सिंह सेंगर के समर्थन में भी बीजेपी के लोगों ने रैलियाँ निकालीं। यदि बलात्कारी मुस्लिम और पीड़िता हिन्दू है तो बीजेपी और आरएसएस के लोग हिन्दू-मुस्लिम दंगे की फिजा बना देते हैं। जैसा कि अलीगढ़ की बच्ची ट्विंकल के मामले में किया गया, जबकि बलात्कारी किसी भी जाति, धर्म, आर्थिक हैसियत या राजनीतिक पहुँच का हो वो सिर्फ एक अपराधी है, उसे भारतीय दण्ड सहिंता के अनुसार सजा मिलनी चाहिए। लेकिन इस देश में ऐसा नहीं होता। भँवरी देवी के मामले में जज ने यह कहकर बलात्कारी को बरी कर दिया कि उच्च जाति का आदमी निम्न जाति की महिला को छू भी नहीं सकता तो बलात्कार कैसे करेगा। जब जातिवादी और पितृसत्तात्मक सोच के लोग पुलिस प्रशासन से लेकर न्यायालयों तक में बैठे हों तो ऐसे में क्या निम्न सामाजिक आर्थिक हैसियत की पीड़ित महिलाओं को इनसाफ मिल पायेगा?

महिलाओं पर बढ़ती यौन हिंसा के चलते हमारा देश महिलाओं के लिए दुनिया में सबसे असुरक्षित देश की श्रेणी में आ गया है। यूरोप के देश अपने यहाँ की महिलाओं को भारत न जाने की नसीहत देते हैं। भारत छोटी बच्चियों के मामले में एक हत्यारा देश बनता जा रहा है। छोटी बच्चियों के साथ बलात्कार, सामूहिक बलात्कार के बाद उसका अंग-भंग कर देना, गला दबाकर मार देना, जला देना जैसे अमानवीय अत्याचार हो रहें हैं। इस देश में सिर्फ महिलाओं के साथ ही नहीं बल्कि पुरुष, बकरी और कुतिया तक से बलात्कार हो रहा है। समाज मानसिक रूप से कितना विकृत हो गया है! पिछले दो दशकों में महिलाओं पर होने वाले अत्याचार में बढ़ोतरी हुई है। इससे पहले भी बलात्कार की घटनाएँ होती थीं, लेकिन पिछले दो दशकों में हमारे देश में जघन्यतम अपराध को अंजाम देने वाले वहशी लोगों की जमात बढ़ी है। राष्ट्रीय अपराधों रिकार्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) के नवीनतम आँकड़ों के मुताबिक 2018 में हर चौथी दुष्कर्म पीड़िता नाबालिग थी, जबकि 50 प्रतिशत से ज्यादा पीड़िताओं की उम्र 18 से 30 साल के बीच थी। आँकड़ों के मुताबिक 94 प्रतिशत मामलों में आरोपी पीड़िता के परिचित-परिवार के सदस्य, दोस्त, सहजीवन साथी, कर्मचारी या अन्य लोग थे। सवाल यह है कि इस समाजिक विकृति और अमानवीयकरण की जटिल समस्या का हल पुलिस

द्वारा हत्या या कठोर कानून से सम्भव है?

पिछले दशकों में महिलाएँ शिक्षा और रोजगार के लिए घरों से बाहर निकली हैं। उनके लिए आगे बढ़ने के कुछ अवसर मिले थे। लेकिन यौन हिंसा की बढ़ती घटनाओं के कारण, बाहर निकलने में उनके मन में एक खौफ है। मेरी एक दोस्त कह रही थी कि पहले मैं कहीं भी बड़े आराम से चली जाती थी, लेकिन अब भाई और पति के साथ भी जाने में डर लगता है। कहीं उनको भी हमारी वजह से कुछ हो न जाये। आखिर हम किस तरीके की समाज व्यवस्था में जी रहे हैं, जहाँ आधी आबादी अपने घर पर और घर से बाहर निकलने पर खौफ में ही रहती है।

बलात्कार की जड़ें इस पितृसत्तात्मक और जातिवादी व्यवस्था में है, जो महिलाओं को सिर्फ एक उपभोग की वस्तु के रूप में देखने का नजरिया देती है और पूँजीवादी व्यवस्था भी उनको एक माल के रूप में स्थापित करती है। हमारी शिक्षा व्यवस्था पुरुषों में औरतों के प्रति मानवीय संवेदना पैदा करने में असफल है। सामाजिक बंदिश और लैंगिक असमानता, लैंगिक पूर्वाग्रह के कारण सेक्स जैसी सहज प्रवृत्ति एक सामाजिक मनोरोग में बदल गयी है। ऐसा अपने से विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण और उसको न पाने की कुण्ठा से होता है, जो अपने जैसे मनोरोगियों का साथ पाकर सामूहिक बलात्कार जैसे जघन्यतम अपराध को अंजाम देता है। सामाजिक परिवर्तन के जरिये ही इस सामाजिक बीमारी का इलाज सम्भव है। इस बलात्कारी मानसिकता, मनोरोग और बलात्कार जैसे अपराध को लैंगिक समानता वाले समाज में ही खत्म किया जा सकता है।

-- राजकमल

तीन सवाल

कैसे मैं,
जहाँ खौफ के मारे पत्थर हो जाना चाहिए,
हँस सकता हूँ,
सुबह नाश्ता करते हुए हँस सकता हूँ?

कैसे मैं
जहाँ कूड़ा, सिर्फ कूड़ा ही फैलता जा रहा है,
इलसेबिल की चूँकि वह सुन्दर है
और सुन्दरता की बातें करूँ?

कैसे मैं,
जहाँ कि उस तस्वीर में पसारे हाथ को
अन्त तक चावल नहीं मिलता,
रसोइये के बारे में लिखूँ--
कैसे वह मुर्ग-मुसल्लम को भरता है?

भरपेट लोग भूख हड़ताल पर हैं।
खूबसूरत-- कूड़ा।
हँसते-हँसते लोट-पोट हम।
मैं ढूँढता हूँ एक लफ्ज शर्म की खातिर।

-- ग्युण्टर ग्रास
अनुवाद-- उज्ज्वल भट्टाचार्य

तेज रफ्तार से बढ़ता कैंसर

4 फरवरी को भारत सहित दुनिया भर के देशों में "विश्व कैंसर दिवस" याद किया गया। इसे कैंसर दिवस के रूप में मनाने की जरूरत ही क्यों पड़ी? कुछ दिन पहले विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्लूएचओ) ने कैंसर के बारे में एक रिपोर्ट प्रकाशित की। इसके अनुसार 2018 में, भारत में 11 लाख 60 हजार कैंसर के नये मरीज बढ़े हैं। इसमें अनुमान लगाया गया है कि भविष्य में देश के 10 में से 1 व्यक्ति को कैंसर का सामना करना पड़ेगा।

जर्नल ऑफ क्लिनिक ओन्कोलॉजी की रिपोर्ट के अनुसार भारत में कैंसर के 11 हजार मरीजों पर मात्र 1 डॉक्टर है। यानी अगर एक डॉक्टर एक दिन में औसतन 30 मरीजों को देखता है तो उसे सभी मरीज देखने में एक साल लगेगा। न जाने उनमें से कितने मरीज इलाज के अभाव मर जाएँगे। पहले लगभग 40 साल की उम्र के लोग कैंसर की चपेट में आते थे लेकिन अब सबसे ज्यादा 20 से 25 साल की उम्र के लोग कैंसर पीड़ित हैं।

कहानी

जामुन का पेड़

-- कृश्न चन्दर

(कृश्न चन्दर की प्रसिद्ध कहानी 'जामुन का पेड़' को दसवीं कक्षा के पाठ्यक्रम से हटा दिया गया है। इसे हटाने वाली सरकारी संस्था काउंसिल फॉर द इंडियन स्कूल सर्टिफिकेट एग्जामिनेशन (आईसीएसई) ने बिना कोई उचित कारण बताये दावा किया कि यह कहानी दसवीं के छात्रों के लिए 'उपयुक्त' नहीं थी। साठ के दशक की यह कहानी व्यंग्यात्मक शैली में सरकारी विभागों के काम के कछुआ चाल पर सवाल उठाती है। यह संस्था इस कहानी से क्यों परहेज कर रही है, इसे कहानी पढ़कर समझा जा सकता है।)

रात को बड़े जोर का झक्कड़ (आँधी) चला। सेक्रेटेरियट के लॉन में जामुन का एक दरख्त गिर पड़ा। सुबह जब माली ने देखा तो इसे मालूम पड़ा कि दरख्त के नीचे एक आदमी दबा पड़ा है।

माली दौड़ा-दौड़ा चपरासी के पास गया। चपरासी दौड़ा-दौड़ा क्लर्क के पास गया। क्लर्क दौड़ा-दौड़ा सुपरिटेण्डेण्ट के पास गया। सुपरिटेण्डेण्ट दौड़ा-दौड़ा बाहर लॉन में आया। मिनटों में गिरे हुए दरख्त के नीचे दबे हुए आदमी के गिर्द मजमा इकट्ठा हो गया।

'बेचारा! जामुन का पेड़ कितना फलदार था।' एक क्लर्क बोला।

'इसकी जामुन कितनी रसीली होती थी।' दूसरा क्लर्क बोला।

'मैं फलों के मौसम में झोली भर के ले जाता था। मेरे बच्चे इसकी जामुनें कितनी खुशी से खाते थे।' तीसरे क्लर्क ने तकरीबन आबदीदा (रुआँसे) होकर कहा।

'मगर ये आदमी?' माली ने दबे हुए आदमी की तरफ इशारा किया।

'हाँ, यह आदमी!' सुपरिटेण्डेण्ट सोच में पड़ गया।

'पता नहीं जिन्दा है कि मर गया!' एक चपरासी ने पूछा।

'मर गया होगा। इतना भारी तना जिनकी पीठ पर गिरे, वह बच कैसे सकता है!' दूसरा चपरासी बोला।

'नहीं मैं जिन्दा हूँ!' दबे हुए आदमी ने बमुश्किल कराहते हुए कहा।

'जिन्दा है!' एक क्लर्क ने हैरत से कहा।

'दरख्त को हटाकर इसे निकाल लेना चाहिए।' माली ने मशविरा दिया।

'मुश्किल मालूम होता है।' एक काहिल और मोटा चपरासी बोला। 'दरख्त का तना बहुत भारी और वजनी है।'

'क्या मुश्किल है?' माली बोला। 'अगर सुपरिटेण्डेण्ट साहब हुक्म दें तो अभी पन्द्रह-बीस माली, चपरासी और क्लर्क जोर लगाकर दरख्त के नीचे से दबे आदमी को निकाल सकते हैं।'

'माली ठीक कहता है।' बहुत-से क्लर्क एक साथ बोल पड़े। 'लगाओ जोर, हम तैयार हैं।'

एकदम बहुत से लोग दरख्त को काटने पर तैयार हो गये।

'ठहरो!', सुपरिटेण्डेण्ट बोला, 'मैं अण्डर-सेक्रेटरी से मशविरा कर लूँ।'

सुपरिटेण्डेण्ट अण्डर-सेक्रेटरी के पास गया। अण्डर-सेक्रेटरी डिप्टी सेक्रेटरी के पास गया। डिप्टी सेक्रेटरी जॉइन्ट सेक्रेटरी के पास गया। जॉइन्ट सेक्रेटरी चीफ सेक्रेटरी के पास गया।

चीफ सेक्रेटरी ने जॉइन्ट सेक्रेटरी से कुछ कहा। जॉइन्ट सेक्रेटरी ने डिप्टी सेक्रेटरी से कुछ कहा। डिप्टी सेक्रेटरी ने अण्डर सेक्रेटरी से कुछ कहा। एक फाइल बन गयी।

फाइल चलने लगी। फाइल चलती रही। इसी में आधा दिन गुजर गया। दोपहर को खाने पर दबे हुए आदमी के गिर्द बहुत भीड़ हो गयी थी। लोग तरह-तरह की बातें कर रहे थे। कुछ मनचले क्लर्कों ने मामले को अपने हाथ में लेना चाहा।

वह हुकूमत के फैसले का इन्तजार किये बगैर दरख्त को खुद से हटाने का तहैया कर रहे थे कि इतने में सुपरिटेण्डेण्ट फाइल लिए भागा-भागा आया, बोला, 'हम लोग खुद से इस दरख्त को यहाँ से हटा नहीं सकते। हम लोग महकमा तिजारत (वाणिज्य विभाग) से मुताल्लिक (सम्बंधित) हैं और यह दरख्त का मामला है जो महकमा-ए-जिराअत (कृषि विभाग) की तहवील (कब्जे) में है। इसलिए मैं इस फाइल को अर्जेन्ट मार्क करके महकमा-ए-जिराअत में भेज रहा हूँ। वहाँ से जवाब आते ही इस को हटवा दिया जाएगा।'

दूसरे दिन महकमा-ए-जिराअत से जवाब आया कि दरख्त हटवाने की जिम्मेदारी महकमा-ए-तिजारत पर आईद (लागू) होती है। यह जवाब पढ़कर महकमा-ए-तिजारत को गुस्सा आ गया। उन्होंने फौरन लिखा कि पेड़ों को हटवाने या न हटवाने की जिम्मेदारी महकमा-ए-जिराअत पर आईद होती है। महकमा-ए-तिजारत का इस मामले से कोई ताल्लुक नहीं है।

दूसरे दिन भी फाइल चलती रही। शाम को जवाब भी आ गया। 'हम इस मामले को हॉर्टीकल्चरल डिपार्टमेण्ट के सुपुर्द कर रहे हैं क्योंकि यह एक फलदार दरख्त का मामला है और

एग्रीकल्चरल डिपार्टमेण्ट को सिर्फ अनाज और खेतीबाड़ी के मामलों में फैसला करने का मजाज (अधिकार) है। जामुन का पेड़ एक फलदार पेड़ है इसलिए पेड़ हॉर्टीकल्चरल डिपार्टमेण्ट के दाइरे-अख्तियार (अधिकार क्षेत्र) में आता है।'

रात को माली ने दबे हुए आदमी को दाल-भात खिलाया हालाँकि लॉन के चारों तरफ पुलिस का पहरा था कि कहीं लोग कानून को अपने हाथ में ले के दरख्त को खुद से हटवाने की कोशिश न करें। मगर एक पुलिस कॉन्स्टेबल को रहम आ गया और इसने माली को दबे हुए आदमी को खाना खिलाने की इजाजत दे दी।

माली ने दबे हुए आदमी से कहा, 'तुम्हारी फाइल चल रही है। उम्मीद है कि कल तक फैसला हो जाएगा।'

दबा हुआ आदमी कुछ न बोला।

माली ने पेड़ के तने को गौर से देखकर कहा, 'हैरत गुजरी कि तना तुम्हारे कूल्हे पर गिरा। अगर कमर पर गिरता तो रीढ़ की हड्डी टूट जाती।'

दबा हुआ आदमी फिर भी कुछ न बोला।

माली ने फिर कहा, 'तुम्हारा यहाँ कोई वारिस हो तो मुझे उसका अता-पता बताओ। मैं उसे खबर देने की कोशिश करूँगा।'

'मैं लावारिस हूँ।' दबे हुए आदमी ने बड़ी मुश्किल से कहा।

माली अफसोस जाहिर करता हुआ वहाँ से हट गया।

तीसरे दिन हॉर्टीकल्चरल डिपार्टमेण्ट से जवाब आ गया। बड़ा कड़ा जवाब था और तंजआमेज (व्यंग्यपूर्ण)। हॉर्टीकल्चरल डिपार्टमेण्ट का सेक्रेटरी अदबी मिजाज का आदमी मालूम होता था।

इसने लिखा था, 'हैरत है, इस समय जब 'दरख्त उगाओ' स्कीम बड़े पैमाने पर चल रही हैं, हमारे मुल्क में ऐसे सरकारी अफसर मौजूद हैं जो दरख्त काटने का मशवरा देते हैं, वह भी एक फलदार दरख्त को! और फिर जामुन के दरख्त को! जिस की फल अवाम बड़ी रगबत (चाव) से खाते हैं! हमारा महकमा किसी हालत में इस फलदार दरख्त को काटने की इजाजत नहीं दे सकता।'

'अब क्या किया जाए?' एक मनचले ने कहा। 'अगर दरख्त काटा नहीं जा सकता तो इस आदमी को काटकर निकाल लिया जाए! यह देखिए, उसी आदमी ने इशारे से बताया। अगर इस आदमी को बीच में से यानी धड़ के मुकाम से काटा जाए तो आधा आदमी इधर से निकल आएगा और आधा आदमी उधर से बाहर आ जाएगा, और दरख्त वहीं का वहीं रहेगा।'

'मगर इस तरह से तो मैं मर जाऊँगा!' दबे हुए आदमी ने एहतजाज किया।

'यह भी ठीक कहता है!' एक क्लर्क बोला।

आदमी को काटने वाली तजवीज (प्रस्ताव) पेश करने वाले ने पुरजोर-एहतजाज (कड़ा विरोध) किया, 'आप जानते नहीं हैं। आजकल प्लास्टिक सर्जरी के जरिये धड़ के मुकाम पर इस आदमी को फिर से जोड़ा जा सकता है।'

अब फाइल को मेडिकल डिपार्टमेण्ट में भेज दिया गया। मेडिकल डिपार्टमेण्ट ने फौरन इस पर एक्शन लिया और जिस दिन फाइल मिली उसने उसी दिन इस महकमे का सबसे काबिल प्लास्टिक सर्जन तहकीकात के लिए भेज दिया।

सर्जन ने दबे हुए आदमी को अच्छी तरह टटोलकर, उसकी सेहत देखकर, खून का दबाव, साँस की आमदो-रफ्त, दिल और फेफड़ों की जाँचकर के रिपोर्ट भेज दी कि, 'इस आदमी का प्लास्टिक सर्जरी का ऑपरेशन तो हो सकता है और ऑपरेशन कामयाब भी हो जाएगा, मगर आदमी मर जाएगा।'

लिहाजा यह तजवीज भी रद्द कर दी गयी।

रात को माली ने दबे हुए आदमी के मुँह में खिचड़ी के लुकमे डालते हुए उसे बताया, 'अब मामला ऊपर चला गया है। सुना है कि सेक्रेटेरियट के सारे सेक्रेटेरियों की मीटिंग होगी। इसमें तुम्हारा केस रखा जाएगा। उम्मीद है सब काम ठीक हो जाएगा।'

दबा हुआ आदमी एक आह भरकर आहिस्ते से बोला, 'हमने माना कि तगाफुल न करोगे लेकिन खाक हो जाएँगे हम, तुमको खबर होने तक!'

माली ने अचम्भे से मुँह में उँगली दबायी। हैरत से बोला, 'क्या तुम शायर हो?'

दबे हुए आदमी ने आहिस्ते से सिर हिला दिया।

दूसरे दिन माली ने चपरासी को बताया। चपरासी ने क्लर्क को और क्लर्क ने हेड-क्लर्क को। थोड़े ही अरसे में सेक्रेटेरियट में यह बात फैल गयी कि दबा हुआ आदमी शायर है।

बस फिर क्या था। लोग जोक-दर-जोक (झुण्ड बनाकर) शायर को देखने के लिए आने लगे। इसकी खबर शहर में फैल गयी। और शाम तक मुहल्ले-मुहल्ले से शायर जमा होना शुरू हो गये। सेक्रेटेरियट का लॉन भान्त-भान्त के शायरों से भर गया। सेक्रेटेरियट के कई क्लर्क और अण्डर-सेक्रेटरी तक, जिन्हें अदब और शायरी से लगाव था, रुक गये।

कुछ शायर दबे हुए आदमी को अपनी गजलें और नज़्में सुनाने लगे। कई क्लर्क इससे अपनी गजलों पर इस्लाह (सुधार) लेने के लिए मुसिर होने (जिद करने) लगे।

जब यह पता चला कि दबा हुआ आदमी शायर है तो सेक्रेटेरियट की सब-कमेटी ने फैसला किया कि चूँकि दबा हुआ आदमी एक शायर है लिहाजा इस फाइल का ताल्लुक न एग्रीकल्चरल डिपार्टमेण्ट से है, न हॉर्टीकल्चरल डिपार्टमेण्ट से बल्कि सिर्फ और सिर्फ कल्चरल डिपार्टमेण्ट से है।

कल्चरल डिपार्टमेण्ट से इसतदअ (गुजारिश) की गयी कि जल्द से जल्द इस मामले का फैसला करके बदनसीब शायर को

इस शजरे-सायादार (छाँव देने वाला पेड़) से रिहाई दिलायी जाये।

फाइल कल्चरल डिपार्टमेण्ट के मुख्तलिफ शुआबों (विभाग) से गुजरती हुई अदबी अकादमी के सेक्रेटरी के पास पहुँची। बेचारा सेक्रेटरी इसी वक्त अपनी गाड़ी में सवार हो कर सेक्रेटेरियट पहुँचा और दबे हुए आदमी से इण्टरव्यू लेने लगा।

'तुम शायर हो?' इसने पूछा।

'जी हाँ।' दबे हुए आदमी ने जवाब दिया।

'क्या तखल्लुस करते हो?'

'अवस।'

'अवस!' सेक्रेटरी जोर से चीखा। 'क्या तुम वही हो जिसका मजमुआ-ए-कलाम (शायरी संग्रह) अवस के फूल हाल ही में शाया (प्रकाशित) हुआ है?'

दबे हुए शायर ने इस बात में सिर हिलाया।

'क्या तुम हमारी अकादमी के मेम्बर हो?' सेक्रेटरी ने पूछा।

'नहीं!'

'हैरत है!' सेक्रेटरी जोर से चीखा। 'इतना बड़ा शायर! 'अवस के फूल' का मुसन्निफ (लेखक)! और हमारी अकादमी का मेम्बर नहीं है! उफ, उफ कैसी गलती हो गयी हमसे! कितना बड़ा शायर और कैसे गोशिया-ए-गुमनामी (गुमनामी के कोने) में दबा पड़ा है!'

'गोशिया-ए-गुमनामी में नहीं बल्कि एक दरख्त के नीचे दबा हुआ... बराहे-करम मुझे इस पेड़ के नीचे से निकालिये।'

'अभी बन्दोबस्त करता हूँ।' सेक्रेटरी फौरन बोला और फौरन जाकर इसने अपने महकमे में रिपोर्ट पेश की।

दूसरे दिन सेक्रेटरी भागा-भागा शायर के पास आया और बोला, 'मुबारक हो, मिठाई खिलाओ, हमारी सरकारी अकादमी ने तुम्हें अपनी मर्कजी कमेटी (केन्द्रीय समिति) का मेम्बर चुन लिया है। यह लो परवाना-ए-इन्तखाब!'

'मगर मुझे इस दरख्त के नीचे से तो निकालो।' दबे हुए आदमी ने कराहकर कहा। उसकी साँस बड़ी मुश्किल से चल रही थी और उसकी आँखों से मालूम होता था कि वह शदीद तशन्नुज और करब (काफी तकलीफ) में मुब्तला है।

'यह हम नहीं कर सकते।' सेक्रेटरी ने कहा। 'जो हम कर सकते थे वह हमने कर दिया है। बल्कि हम तो यहाँ तक कर सकते हैं कि अगर तुम मर जाओ तो तुम्हारी बीवी को वजीफा दिला सकते हैं। अगर तुम दरख्वास्त दो तो हम यह भी कर सकते हैं।'

'मैं अभी जिन्दा हूँ।' शायर रुक-रुककर बोला। 'मुझे जिन्दा रखो।'

'मुसीबत यह है,' सरकारी अकादमी का सेक्रेटरी हाथ मलते हुए बोला, 'हमारा महकमा सिर्फ कल्चर से मुताल्लुक है। इसके लिए हमने 'फॉरेस्ट डिपार्टमेण्ट' को लिख दिया है। 'अर्जेण्ट' लिखा है।'

शाम को माली ने आकर दबे हुए आदमी को बताया कि कल फॉरेस्ट डिपार्टमेण्ट के आदमी आकर इस दरख्त को काट देंगे और तुम्हारी जान बच जाएगी।

माली बहुत खुश था कि गो दबे हुए आदमी की सेहत जवाब दे रही थी मगर वह किसी-न-किसी-तरह अपनी जिन्दगी के लिए लड़े जा रहा है। कल तक... सुबह तक... किसी न किसी तरह इसे जिन्दा रहना है।

दूसरे दिन जब फॉरेस्ट डिपार्टमेण्ट के आदमी आरी-कुल्हाड़ी लेकर पहुँचे तो इनको दरख्त काटने से रोक दिया गया। मालूम यह हुआ कि महकमा-ए-खारजा (विदेश विभाग) से हुक्म आया कि इस दरख्त को न काटा जाये।

वजह यह थी कि इस दरख्त को दस साल पहले हुकूमते पिटोनिया के वजीरे-आजम (प्रधानमंत्री) ने सेक्रेटेरियट के लॉन में लगाया था। अब यह दरख्त अगर काटा गया तो इस अम्र (बात) का शदीद अन्देशा था कि हुकूमते-पिटोनिया से हमारे ताल्लुकात हमेशा के लिए बिगड़ जाएंगे।

'मगर एक आदमी की जान का सवाल है!' एक क्लर्क गुस्से से चिल्लाया।

'दूसरी तरफ दो हुकूमतों के ताल्लुकात का सवाल है।' दूसरे क्लर्क ने पहले क्लर्क को समझाया। 'और यह भी तो समझो कि हुकूमते-पिटोनिया हमारी हुकूमत को कितनी इमदाद (ग्राण्ट) देती है। क्या हम इन की दोस्ती की खातिर एक आदमी की जिन्दगी को भी कुर्बान नहीं कर सकते?'

'शायर को मर जाना चाहिए।'

'बिलाशुबा।' (निसन्देह)

अण्डर-सेक्रेटरी ने सुपरिटेण्डेण्ट को बताया। 'आज सुबह वजीरे-आजम बाहर-मुल्कों के दौरे से वापस आ गये हैं। आज चार बजे महकमा-ए-खारजा इस दरख्त की फाइल उन के सामने पेश करेगा। जो वह फैसला देंगे वही सबको मंजूर होगा।'

शाम पाँच बजे खुद सुपरिटेण्डेण्ट शायर की फाइल ले कर उसके पास आया। 'सुनते हो?' आते ही खुशी से फाइल हिलाते हुए चिल्लाया, 'वजीरे-आजम ने दरख्त को काटने का हुक्म दे दिया है और इस वाकये की सारी बैनुल-अक्वामी (अन्तरराष्ट्रीय) जिम्मेदारी अपने सिर पर ले ली है। कल वह दरख्त काट दिया जाएगा और तुम इस मुसीबत से छुटकारा हासिल कर लोगे।'

'सुनते हो? आज तुम्हारी फाइल मुकम्मल हो गयी!' सुपरिटेण्डेण्ट ने शायर के बाजू को हिलाकर कहा। मगर शायर का हाथ सर्द था। आँखों की पुतलियाँ बेजान थीं और चींटियों की एक लम्बी कतार उसके मुँह में जा रही थी।

उसकी जिन्दगी की फाइल भी मुकम्मल हो चुकी थी।

झूठ के सामने दम तोड़ता सच

-- राजेश कुमार

"मैं सच कहूँगी मगर फिर भी हार जाउँगी, वो झूठ बोलेगा और लाजवाब कर देगा"। परवीन शाकिर का यह शेर आज के दौर में झूठ और फर्जी खबर का कारखाना बन गयी सोशल मीडिया पर सटीक बैठता है। व्हाट्सएप और फेसबुक पर झूठी खबरें पूरी दुनिया के लिए एक चुनौती बनी हुई हैं। ब्राजील का चुनाव हो या भारत का, यहाँ तक कि अमरीकी चुनाव भी सोशल मीडिया पर फैले झूठ से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। विपक्षी उम्मीदवार को नीचा दिखाने के लिए सत्ता पक्ष नये झूठ गढ़ता है। विपक्ष भी दूध का धुला नहीं है, अपनी क्षमतानुसार वह भी झूठ का कारोबार करता है।

हमारे देश में पचास प्रतिशत से ज्यादा इण्टरनेट उपयोगकर्ता खबरों के लिए व्हाट्सएप और फेसबुक पर निर्भर रहते हैं। वे इन सोशल एप पर आयी खबर को सच मानते हैं और उसी के अनुसार व्यवहार करते हैं। इसी का नतीजा है कि सिर्फ 2017-18 में व्हाट्सएप मेसेज से गुमराह होकर भीड़ ने 31 लोगों की जान ले ली।

बिना सिर-पैर की और हास्यास्पद बहस करने वाले संबित पात्रा ने शाहीन बाग में चल रहे विरोध प्रदर्शन के एक पोस्टर को हिन्दू विरोधी करार देते हुए ट्वीट किया। सिर्फ दो घण्टों में इस ट्वीट ने सात हजार लाइक पाये और तीन हजार बार रीट्वीट किया गया। इस पोस्टर में डॉक्टर संबित पात्रा ने नाजियों के प्रतीक चिन्ह को हिन्दुओं का स्वास्तिक बताकर झूठ फैलाया और हिन्दुओं से चेतावनी भरे अन्दाज में कहा कि- "जाग जाओ नहीं तो बहुत देर हो जायेगी"। जबकि सच बात यह है कि दुनियाभर में हिटलर को तानाशाही का प्रतीक समझा जाता है। जहाँ भी लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए संघर्ष होते हैं वहाँ हिटलर और उससे जुड़े प्रतीकों का विरोध लाजिमी है। चीन में भी जब छात्र आन्दोलन करते हैं तो वे नाजियों के प्रतीक को पोस्टर पर लगाकर अपना विरोध जताते हैं।

दूसरा उदाहरण लेते हैं। पोस्टकार्ड न्यूज के संस्थापक महेश विक्रम हेगड़े ने 20 जनवरी को ट्वीट किया। "कुछ दिन पहले जिहादियों ने जला दिया था और अब मंगलुरु अन्तरराष्ट्रीय एयरपोर्ट पर कुछ बमों के होने का पता चला है। जिहादियों को ज्यादा ताकत मिल रही है। अगर पुलिस इसके पीछे के चेहरे का पता लगा सके तो राजनेता मुश्किल में पड़ जाएँगे! घृणित"। यह खबर बीजेपी, विश्व हिन्दू परिषद (वीएचपी) और दूसरे ऐसे समूहों में खूब वायरल हुई जो किसी भी आतंकी घटना के लिए आतंकवादी को धर्म विशेष में खोजते हैं। विश्वनाथ, वीएचपी के वही नेता जिन्होंने सबरीमाला मन्दिर में महिलाओं के प्रवेश पर सुप्रीम कोर्ट के निर्णय के खिलाफ हड़ताल का नेतृत्व किया था। खैर, जाँच-पड़ताल से सच्चाई का पता चला कि बम रखने वाला तो कोई आदित्य राव है। पर तब तक देर हो चुकी थी। नफरत का जहर लोगों के दिलो-दिमाग में घुस चुका था।

तीसरा उदाहरण-- यह झूठ फैलाया गया कि एनआरसी और सीएए के समर्थन में जाने के लिए बीजेपी नेता इनायत हुसैन के चेहरे को स्याही से पोत दिया और सैण्डल से पिटाई की, इसका एक फर्जी वीडियो भी वायरल हुआ। पर सच्चाई यह थी कि यह वीडियो अजमेर दरगाह के सचिव की 2018 में हुई पिटाई का है।

चौथा उदाहरण-- एनआरसी और सीएए के समर्थकों ने उसके विरोध में चल रहे आन्दोलन को बदनाम करने के लिए कहा कि शाहीन बाग में बैठने के लिए 500 रुपये और बिरियानी मिल रही है। इस कानून के साथ सहमति रखने वालों ने इसे जंगल में लगी आग की तरह फैलाया। यही नहीं, आन्दोलनकारी महिलाओं के चरित्रहनन के कुत्सित प्रयास आज भी जारी हैं।

किसने सोचा था कि साधारण से मेसेज भेजने वाले सोशल मीडिया एप इतने ताकतवर हो जाएँगे कि एक दिन सत्ता तक पहुँचने का जरिया बन जायेंगे। ब्राजील के अति दक्षिणपन्थी राष्ट्रपति जैर बोलसोनारो की ताजपोशी में व्हाट्सएप ने अहम भूमिका निभायी थी। उनके समर्थकों ने व्हाट्सएप ग्रुप बनाये और विपक्षी प्रतिनिधियों के खिलाफ प्रचार किया। विपक्षी नेताओं को लेकर घटिया मीम्स, डॉक्टर्ड वीडियो और जोक्स बनाकर खूब प्रचारित किया गया। बोलसोनारो को चमत्कारी और बहुत मजबूत बनाकर जनता के बीच पेश किया किया गया। बोलसोनारो की ऐसी छवि गढ़ी गयी जैसे भ्रष्टाचार और बेरोजगारी कोई राक्षस हैं और बोलसोनारो एक ताकतवर देवता जिसके राष्ट्रपति पद पर आते ही ये दोनों राक्षस घुटनों के बल रेंगने लगेंगे। खैर बोलसोनारो लगभग दस प्रतिशत ज्यादा बहुमत से विजयी हुए। इसी के साथ ब्राजील को मिला ऐसा राष्ट्रपति जिसने एक महिला पर अभद्र टिप्पणी की कि "वह इतनी कुरूप है कि उसके साथ बलात्कार भी नहीं किया जा सकता" और तानाशाही पर कहा कि "हमें तानाशाही पसन्द है।" पर चुनाव जीतने पर वह अपने बयान से पलट गया

और कहने लगा कि- "हम लोकतन्त्र का बचाव करेंगे और संविधान को लागू करेंगे"। ठीक ही बात है जब सीधी अंगुली से घी निकल रहा है तो अंगुली टेढ़ी करने की क्या जरूरत। जब संविधान के दायरे में रहकर उसकी ताजपोशी हो ही गयी तो उसे संविधान से क्या समस्या। दूसरी बात ब्राजील के मौजूदा संविधान की कसम खाकर उसने बाजार पर सरकारी नियंत्रण कम करना शुरू कर दिया है। सरकारी सम्पत्तियों को बेचना, शिक्षा और स्वास्थ्य को मुनाफाखोरों के हवाले कर देना, अमेजन के जंगलों में आग लगवाना यह सब काम अब ब्राजील में तेजी से हो रहा है। मजेदार बात यह कि उसकी ताजपोशी में हमारे प्रधानमंत्री ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। भारत सरकार ने इन महाशय को 2020 की गणतंत्र दिवस की परेड में बतौर मुख्य अतिथि आमंत्रित किया।

हमारे देश की कहानी भी जैर बोलसोनारो से कम रोचक नहीं है

पूरी धरती पर 180 देशों में करीब डेढ़ अरब व्हाट्सएप उपयोगकर्ता सक्रिय हैं। इनमें से तीस करोड़ से भी ज्यादा भारत में हैं। यह भारत की जनसंख्या का एक चौथाई हिस्सा है। हर परिवार में औसत चार सदस्य मानें तो उनमें से कम से कम कोई एक व्हाट्सएप पर सक्रिय है। मतलब हर घर तक इन झूठी खबरों की पहुँच है।

व्हाट्सएप चलाने वाले अनपढ़ और मूर्ख नहीं हैं। वे राजनीतिक कार्यकर्ता हैं, नेता हैं, आईटी सेल के मुलाजिम हैं, डॉक्टर हैं, वकील हैं, प्रोफेसर हैं, सम्पादक हैं, कलाकार हैं और फिल्म निर्माता हैं। यानी देश के अगुआ लोगों की पूरी एक बटालियन है। पर वे ऐसा क्यों करते हैं? इसका उत्तर जानने के लिए किसी पीएचडी की जरूरत नहीं। वे लोग जिनका सच उजागर होने से राजपाट खतरे में पड़ जायेगा, झूठ और फर्जी खबर का धूल भरा गुबार खड़ा करते हैं जो लोगों को आँख बन्द करने पर मजबूर कर देती है। फर्जी खबर फैलाने वाले समूह जनता के मनोविज्ञान से परिचित होते हैं। जनता की कमजोरियों, तरह-तरह की शंकाओं और मन की भीतरी परतों में दफन डर का फायदा उठाकर फर्जी खबरों को हवा दी जाती है। उसके मौजूदा संकट को हल्का करके अतीत के गढ़े गये किस्सों और पूर्वाग्रहों को गम्भीर और जरूरी बताकर पेश किया जाता है। किसी व्यक्ति की समस्या को समाज की समस्या और सामाजिक समस्या को व्यक्ति-विशेष की समस्या बताकर गुमराह किया जाता है। सामाजिक मुद्दों पर बात करने वालों को असामाजिक और समाज के लिए खतरे के रूप में पेश किया जाता है। विवेकशील लोगों को 'बुद्धिजीवी' कहकर उनका उपाहास किया जाता है।

आज फर्जी खबर फैलाने का सबसे अच्छा साधन है-- व्हाट्सएप। क्योंकि इस पर आप एक जैसी सोच वालों का ग्रुप आसानी से तैयार कर सकते हैं। व्हाट्सएप ग्रुप चलाने वाले के पास इसे एक तरफा रखने की क्षमता होती है।

हमारे देश में दो वेबसाइट फर्जी न्यूज का पर्दाफाश करने के लिए मशहूर हैं। एक है अल्टन्यूज और दूसरी है बूम। इन वेबसाइट ने अब तक हजारों मसले सुलझाये हैं। इन झूठी और फर्जी खबरों से आप राजनीतिक सरगर्मी और देश के बुद्धिजीवी वर्ग की उथल पुथल को समझ सकते हैं। चाहे अनचाहे इन झूठी खबरों पर लम्बी बहस छिड़ जाती है और सरकार को वॉक ओवर मिल जाता है। क्योंकि जितनी देर में आप यह साबित करेंगे कि वे लोग झूठ फैला रहे हैं उतनी देर में दो नये झूठ आपके सामने तैयार खड़े होंगे। उधर अन्दर ही अन्दर सरकार दो-चार सरकारी कम्पनियों के निजीकरण या नीलामी का रोडमैप तैयार कर चुकी होगी।

इस सारे नजारे को कुछ ऐसे समझा जा सकता है जैसे एक बहुत घना और बड़ा पेड़ था। सबको छाया देता था। सभी जीव जन्तु और पक्षी मेलजोल से रहते थे। तभी एक व्यापारी को पता चला कि उसकी जड़ के नीचे बहुत गहना छुपा हुआ है। पर उसके लिए तो पेड़ को काटना पड़ेगा। व्यापारी जब पेड़ को काटने आया तो सारे जीव-जन्तु और पक्षी विरोध में उतर आये। आखिर उनकी जिन्दगी का सवाल था। व्यापारी को एक उपाय सूझा। वह कुछ उत्पाती बन्दरों को ले आया। वे दिन रात झूठ बोलते थे और फर्जी खबर उड़ाते थे। कुछ ही दिन में पूरे पेड़ पर एक दहशत का माहौल बन गया। एक बन्दर ने खबर उड़ाई। पेड़ के उस कोने में कबूतर गिलहरी को नोंच रहे हैं। तभी सारी गिलहरी अपने आसपास के कबूतरों पर टूट पड़ीं। कबूतरों के छोटे-छोटे बच्चों को घोंसलों से नीचे फेंक दिया गया। धीरे-धीरे पूरे पेड़ पर खून-खराबा बढ़ गया। पेड़ से गिरती खून की धार देखकर व्यापारी के दिल में ठण्डक पड़ी। फिर व्यापारी आया और पेड़ को जड़ से काटने लगा। सभी जीव-जन्तु और पक्षी डरे सहमे अकेले-अकेले अपने घोंसलों में बैठे रहे। कुछ ही दिन बाद पेड़ धड़ाम से जमीन पर गिर गया। जमीन उसके सम्मान में थोड़ी सी नीचे धँस गयी। सभी घोंसले उजड़ गये। जीव-जन्तु, पक्षी सबको पेड़ की घनी शाखाओं ने अपनी बाहों में हमेशा के लिए सुला लिया। सभी बन्दरों को एक एयर कण्डीशन कार में बैठाकर व्यापारी ऐसे ही दूसरे पेड़ पर छोड़ आया।

अब ऐसे ही कुछ बन्दरों की सच्ची कहानी से हम अपने देश के माहौल को समझ सकते हैं। ऐसे बन्दरों में बहुत सारे नाम हैं।

एक बात और, हमारे देश के नागरिक इतने खानों में बँट गये हैं कि हमें सिर्फ अपनी पसन्द का सच सुनना अच्छा लगता है। जैसे डॉक्टर संबित पात्रा की फैलाई खबर हिन्दुओं की तरफ झुकाव और मुस्लिमों के लिए नफरत रखने वालों को सही लगेगी। उनके पूर्वाग्रहों को और मजबूत बनाएगी।

शेष पेज 43 पर...

अमरीका ने कासिम सुलेमानी को क्यों मारा?

-- विक्रम प्रताप

कासिम सुलेमानी ईरान के कुद्स फौज के कमाण्डर थे जिन्हें 3 जनवरी 2020 को शुक्रवार के दिन अमरीका ने हवाई हमले में मार दिया। उनकी मौत पर ईरान के विदेश मंत्री जावेद जरीफ ने कहा कि अमरीका का यह आतंकवादी कारनामा बहुत ही खतरनाक है और अमरीका को इसके सभी परिणाम भुगतने होंगे, जो उसने अपने गन्दे दुस्साहस के चलते पैदा किये हैं। दूसरी तरफ अमरीका के हाउस ऑफ रिप्रेजेण्टेटिव की प्रवक्ता नैंसी पेलोसी ने कहा कि सुलेमानी की हत्या पूरे मध्य एशिया के इलाकों में हिंसा को बहुत बड़े स्तर पर बढ़ा देगी। दोनों देशों के बीच तनाव आज अपने चरम पर है।

आइये पिछले दिनों की कुछ बड़ी घटनाओं पर एक नजर डालते हैं। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि ओबामा प्रशासन के दौरान दोनों पक्षों ने अमरीका-ईरान के बीच अच्छे सम्बन्ध बनाने की कोशिश की थी। इसी को ध्यान में रखते हुए अमरीका-ईरान नाभकीय समझौता भी हुआ था। लेकिन 8 मई 2018 को नये राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प ने एकतरफा इस समझौते को भंग कर दिया। 8 अप्रैल 2019 को वाशिंगटन ने ईरान के रिवॉल्यूशनरी गार्ड्स को एक आतंकवादी संगठन घोषित कर दिया और इसके कुद्स बलों को, जो विदेश में रहकर काम करते थे, उसे काली सूची में डाल दिया। 12 मई को चार जहाजों पर जिनमें तीन तेल के टैंकर थे, ईरान के पास खाड़ी में गुजरते हुए रहस्यमय तरीके से आग लग गयी। अमरीका ने इसका दोष ईरान के मत्थे मढ़ दिया। 13 जून नार्वे और जापान के टैंकर भी हमले के शिकार हुए। 20 जून को ईरान के रिवॉल्यूशनरी गार्ड ने बताया कि उसने अमरीका के ड्रोन को मार गिराया है जो ईरान के हवाई क्षेत्र की सीमा को लाँघ रहा था। यह हमला हॉरमुज जलसन्धि में किया गया। ट्रम्प ने बदले की कार्रवाई की योजना बनायी। लेकिन अन्तिम समय पर उसे निरस्त कर दिया। 24 जून को ट्रम्प ने घोषणा की कि रूहुल्लाह खुमैनी और ईरान के सीनियर सैन्य नेताओं के ऊपर आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। 18 जुलाई को ट्रम्प ने कहा कि अमरीकी सेना ने ईरान के एक ड्रोन को मार गिराया है, जो हॉरमुज जलसन्धि में खतरनाक रूप से उसके जहाज के पास आ रहा था। 14 सितम्बर 2019 को यमन के हाउती विद्रोहियों ने सऊदी अरब के तेल क्षेत्र पर भयानक हमला बोल दिया, जिससे पूरा सऊदी अरब दहल गया। ऐसा माना जाता है कि हमला ईरान के समर्थन में हाउती विद्रोहियों ने किया था। अमरीका ने इस हमले का आरोप ईरान पर लगाया। 20 सितम्बर 2019 को अमरीका ने ईरान के ऊपर बहुत ही ऊँचे स्तर के आर्थिक प्रतिबन्ध लगाने की घोषणा की। 29 दिसम्बर 2019 को अमरीका ने इराक में ईरान समर्थित समूहों पर हवाई हमले किये। 31 दिसम्बर को ईरान के समर्थक प्रदर्शनकारियों ने बगदाद में अमरीका के दूतावास पर विरोध प्रदर्शन और तोड़फोड़ की। इन सभी घटनाओं ने अमरीका-ईरान सम्बन्ध को खतरनाक मोड़ पर ला खड़ा किया। मध्य एशिया में अपना दबदबा कमजोर पड़ता देख अमरीका पहले से ही बौखलाया हुआ था, इन घटनाओं ने आग में घी का काम किया। इसके साथ ही उसके लिए कासिम सुलेमानी एक गम्भीर चुनौती बनते जा रहे थे।

सेना में सुलेमानी का कैरियर अच्छा बताया जाता है। वह ईरान की इस्लामिक क्रान्ति के एक रक्षक के तौर पर जाने जाते थे और ईरान के सर्वोच्च नेता रूहुल्लाह खुमैनी के बेहद नजदीक थे। खुमैनी ने कभी उन्हें 'क्रान्ति का जिन्दा शहीद' कहकर पुकारा था। हालाँकि कासिम सुलेमानी ताकत के बल पर विरोध को कुचल देना अपना अधिकार मानते थे। ईरान में कासिम सुलेमानी को बेहद कठोर सैनिक नेता के रूप में जाना जाता है क्योंकि 1999 में जब असन्तुष्ट छात्रों ने सरकार के खिलाफ विरोध प्रदर्शन किया था तो कासिम सुलेमानी ने सुधारवादी नेता मोहम्मद खातमी को लिखा कि हमारी धैर्य की सीमा जवाब दे रही है अगर सरकार ने इन प्रदर्शनकारियों के खिलाफ कठोर कदम नहीं उठाया तो ठीक नहीं होगा। सरकार ने छात्र आन्दोलन को बुरी तरह कुचल दिया।

सुलेमानी से अमरीका क्यों खार खाया हुआ था? जैसा लगभग तय था, सुलेमानी की हत्या के बाद मध्य एशिया में तनाव अपने ऊँचे स्तर पर पहुँच गया। यहाँ तक सम्भावना जतायी जाने लगी कि अमरीका और ईरान के बीच में पूरी तरह युद्ध शुरू हो सकता है और पूरा इलाका युद्ध की चपेट में आ सकता है, क्योंकि सीरिया, इराक, लीबिया, अफगानिस्तान और ईरान में अमरीका के समीकरण गड़बड़ा गये हैं। खासतौर से इराक, सीरिया, अफगानिस्तान और यमन में। इन देशों में कई सालों से इस्लामिक स्टेट के आतंकवादी लगातार सक्रिय थे और अपना प्रभाव लगातार बढ़ाते जा रहे थे। ऐसा माना जाता है कि अमरीका सीरिया में बशर अल असद की सरकार के खिलाफ उन्हें पूरी मदद उपलब्ध करा रहा था। वह रूस समर्थित

असद-सरकार को कमजोर करना चाहता था, ताकि सीरिया में अपना प्रभाव बढ़ा सके, जबकि रूस असद-सरकार के साथ खड़ा था। यहाँ पर ध्यान देने वाली बात यह है कि अमरीका तेल के कुओं को कब्जाने के लिए मध्य एशिया में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सैन्य हस्तक्षेप करता रहा है, दूसरी तरफ रूस भी इस इलाके में अपने पैर जमाना चाहता है। यह दोनों शक्तियों के बीच टकराव का कारण है। स्थानीय स्तर पर तमाम राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय ताकतों के बीच का टकराव ही मध्य एशिया में अन्तर्विरोध को गति दे रहा है। सुलेमानी ने इस अन्तर्विरोध को ईरान के पक्ष में मोड़ दिया था।

ईरान इस बात को जानता है कि मध्य एशिया में सैनिक ताकत के दम पर वह अमरीका तथा इजरायल और सऊदी अरब जैसे उसके समर्थक देशों के सामने टिक नहीं सकता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए और पूरे इलाके में शिया आबादी के विस्तार को देखते हुए उसने एक जबरदस्त रणनीति बनायी। इस इलाके में कुद्स बलों को तैनात किया गया और उसने शिया आबादी में अपने प्रभाव के विस्तार के लिए संगठन बनाना, सेना तैयार करना और पार्टियाँ बनाना शुरू किया, जिससे ईरान का प्रभाव इस इलाके में बढ़ सके। 1998 में कासिम सुलेमानी को कुद्स फौज का कमाण्डर नियुक्त किया गया। ईरान ने पूरे इलाके में अपना प्रभाव बढ़ाने तथा अमरीका और इस्लामिक स्टेट के नेटवर्क को तोड़ने के लिए शिया नागरिक सेना खड़ी की। इस मामले में सुलेमानी की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।

पिछले कुछ सालों से जब सीरिया और इराक में ईरान अपने प्रभाव का विस्तार कर रहा था तथा अमरीका के साथ उसका सम्बन्ध बिगड़ना शुरू हुआ तो कासिम सुलेमानी को एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति माना जा रहा था। कुद्स बलों के कमाण्डर के रूप में सुलेमानी के सामने सबसे बड़ी चुनौती थी-- सीरिया और इराक में इस्लामिक स्टेट को हराना। 2011-12 में सीरिया की असद-सरकार के खिलाफ इस्लामिक स्टेट के आतंकवादियों ने विद्रोह कर दिया था। इस्लामिक स्टेट के हमले के चलते असद की सरकार का प्रभाव क्षेत्र धीरे-धीरे कम होता चला गया। और अगर उसे कहीं और से मदद नहीं मिलती तो उसकी हार सुनिश्चित थी। पूरे इलाके में असद का सहयोगी केवल ईरान था और ईरान ही लेबनान में सक्रिय हिज्बुल्लाह के साथ सीरिया की सरकार के बीच एक महत्त्वपूर्ण कड़ी भी था। अगर असद-सरकार गिर जाती तो ईरान कमजोर हो जाता। सुलेमानी का काम था कि वह ऐसा होने से रोके। सुलेमानी का कहना था कि सीरिया की सेना बेकार है। उन्होंने शिया नागरिक सेना को प्रशिक्षण दिया और उन्हें सीरिया में लड़ने के लिए भेज दिया। इस सेना ने इस्लामिक स्टेट के आतंकवादियों का डटकर मुकाबला किया। उसी समय हिज्बुल्लाह के नेता हसन नसरुल्लाह के साथ रणनीतिक लड़ाई के लिए सम्बन्ध बनाया गया। 2013 में शिया नागरिक सेना और हिज्बुल्लाह के लड़ाकों ने सीरिया और लेबनान की सीमा पर लगे हुए क्योशायर इलाके से विद्रोहियों को मार भगाया और उस पर कब्जा कर लिया। इस शुरुआती जीत ने असद-सरकार के लिए संजीवनी का काम किया। आगे चलकर 2015 में रूसी सेना ने हवाई हमले करके आतंकवादियों के हौसले पस्त कर दिये और जमीन पर सुलेमानी के लड़ाकों ने सीरिया की सेना के साथ मिलकर इस्लामिक स्टेट पर कहर ढा दिया। इस युद्ध में असद-सरकार की जीत हुई।

इस्लामिक स्टेट की इस हार ने अमरीका को करारा झटका दिया। उसने अपनी बड़ी ताकत इस्लामिक स्टेट के पीछे झोंक रखी थी। इस्लामिक स्टेट की हार का मतलब था, अमरीका की हार। अमरीका समझ नहीं पा रहा था कि क्या करे? इसके अलावा इराक में इस्लामिक स्टेट अमरीका के हाथ से निकल चुका था, जो अमरीका के समर्थन वाली इराकी सरकार के ऊपर कहर ढा रहा था। एक-एक करके इराकी सरकार के हाथ से शहर छिनते जा रहे थे। इस्लामिक स्टेट ने तिकरित, फल्लुजाह, रमादी, मोसुल आदि इलाकों से सरकार के सैनिकों को खदेड़ दिया था।

शिया नागरिक सेना जो ईरान में प्रशिक्षित की गयी थी और सुलेमानी के नेतृत्व में लड़ रही थी, उसने इराक में भी इस्लामिक स्टेट के खिलाफ मोर्चा थाम लिया और धीरे-धीरे अलग-अलग इलाकों को अपने हाथ में कर लिया। यहाँ सुलेमानी ने इस्लामिक स्टेट के खिलाफ अमरीकी भावनाओं का फायदा उठाया। उसके लड़ाकों ने शिया नागरिक सेना और इराक की सेना के साथ मिलकर इस्लामिक स्टेट पर हमला किया। अमरीका अनजाने में ही सुलेमानी की मदद करता रहा। उसने इस्लामिक स्टेट पर हवाई हमला करके इलाके को जीतने में मदद की। 2014 में इराकी सेना ने शिया नागरिक सेना के सहयोग से तिकरित, फल्लुजाह, रमादी, मोसुल आदि इलाके इस्लामिक स्टेट से मुक्त करा लिये। आतंकवादियों का नेटवर्क पूरी तरह नेस्तनाबूद कर दिया गया। अमरीका का प्रभाव दोनों देशों में कम होता जा रहा था और ईरान का बढ़ता जा रहा था। सीरिया की सरकार अपने गृह युद्ध में बच निकली लेकिन इन सारे कामों को जिस व्यक्ति ने अंजाम दिया यानी कासिम सुलेमानी वह अमरीका की निगाह में सबसे बड़ा काँटा था जिसे 3 जनवरी 2020 को अमरीका ने मार दिया।

इन घटनाओं की रोशनी में, अमरीकी साम्राज्यवादी प्रभुत्व और ईरानी क्षेत्रीय प्रभाव के लिए दोनों के बीच रस्साकसी और साँप-नेवले की लड़ाई में अमरीका द्वारा कासिम सुलेमानी की हत्या का नतीजा क्या होगा यह समझना कठिन नहीं। इराक और अफगानिस्तान की तरह ही ईरान, सीरिया और पूरे मध्य एशिया में दिनोंदिन अमरीकी मंसूबे की हवा निकलती जा रही है। यह हत्याकाण्ड इसी से पैदा होनेवाली बदहवासी का नतीजा है।

मध्य-पूर्व एशिया : पतन की ओर अमरीका

-- अजहर

3 जनवरी 2020 को अमरीका ने ईरान के मेजर जनरल कासिम सुलेमानी को बगदाद के अन्तरराष्ट्रीय हवाई अड्डे पर ड्रोन हमले में मार दिया था। जवाबी कार्रवाई में ईरान ने इराक स्थित दो अमरीकी सैन्य ठिकानों को निशाना बनाते हुए एक दर्जन से अधिक मिसाइलें दागी और यह बताया कि इस हमले में 80 अमरीकी आतंकवादी मारे गये, हालाँकि अमरीका ने किसी भी प्रकार की क्षति से इनकार किया है। अन्तरराष्ट्रीय मंच पर किसी देश ने पहली बार अमरीकी सैनिकों को खुले तौर पर अमरीकी आतंकवादी कहा है। मध्य-पूर्व के देशों में अमरीका का पुरजोर विरोध करने के मामले में ईरान कोई कसर नहीं छोड़ रहा है। तमाम आर्थिक प्रतिबन्ध लगाये जाने के बावजूद भी ईरान ने घुटने नहीं टेके हैं। सुलेमानी की हत्या की जवाबी कार्रवाई के बाद ट्रम्प ने ईरान के 52 सांस्कृतिक स्थलों पर हमला करने की धमकी दी थी जिसकी खुद अमरीका सहित पूरी दुनिया में भर्त्सना की गयी। पेण्टागोन ने एक बयान में कहा कि ऐसा करना युद्ध के स्थापित नियमों के खिलाफ है। इसके बाद ट्रम्प ने अपना बयान वापस ले लिया। इसके खिलाफ ईरान का बयान सन्तुलित था, उसने केवल अमरीकी सैन्य अड्डों पर हमला करने की धमकी दी। हालाँकि दोनों ही देश युद्ध में नहीं फँसना चाहेंगे। अमरीका द्वारा लगाये गये आर्थिक प्रतिबन्धों के कारण ईरान की मुद्रा का रिकॉर्ड स्तर पर अवमूल्यन हुआ है और इससे उसकी अर्थव्यवस्था को बड़ा नुकसान हुआ है। दूसरी ओर अमरीका अफगानिस्तान, इराक और लीबिया में आज भी उलझा हुआ है और उसे पूरी तरह मुक्ति नहीं मिल पायी है। फिर भी संयुक्त राष्ट्र के महासचिव एण्टोनियो गुटेरेस ने यह चिन्ता जाहिर की है कि मध्य-पूर्व में मौजूदा तनाव सदी के उच्चतम स्तर पर है।

ईरान की इस्लामी क्रान्ति के जरिये अमरीकी पिट्ठू शाह रजा पहलवी को सत्ता से हटाये जाने के बाद से ईरान और अमरीका एक दूसरे के दुश्मन बन गये। तब से इन दोनों देशों के सम्बन्ध कभी पूरी तरह सुधर नहीं पाये। 8 मई 2018 को अमरीका ने ईरान के साथ हुए नाभिकीय समझौते से हाथ पीछे खींच लिया जिसके बाद दोनों देशों के बीच के तनाव ने और जोर पकड़ लिया था। अमरीका ने आर्थिक प्रतिबन्ध लगाकर ईरान के परमाणु और बैलेस्टिक मिसाइल कार्यक्रम को रोकने की कोशिश की लेकिन ईरान नहीं रुका। ईरान के परमाणु और बैलेस्टिक मिसाइल कार्यक्रम से अमरीका के साथ-साथ मध्य-पूर्व के उसके सहयोगियों सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात, कुवैत और इजरायल की भी परेशानियाँ बढ़ गयी हैं। अमरीका ईरान की पहुँच से दूर है, लेकिन तनाव बढ़ने से अमरीका के सहयोगी देशों पर खतरा बढ़ सकता है। 14 सितम्बर 2019 को हाउती विद्रोहियों ने सऊदी अरब के तेल क्षेत्रों पर हमला किया था। यह अमरीका के लिए शर्मनाक था कि वह इस मामले में कुछ न कर सका, बौखलाहट में इसका आरोप ईरान पर लगा दिया और इसके बाद उसने ईरान पर आर्थिक प्रतिबन्धों को और बढ़ा दिया। अमरीका की लाचारी का एक और कारण हॉरमुज जल-संधि है। हॉरमुज जल-संधि ईरान और ओमान के बीच स्थित है। यह एक पतला रास्ता है जो तेल बाहुल्य क्षेत्र को अरब सागर से जोड़ता है। यहीं से तेल के टैंकर गुजरते हैं। तेल के व्यापार की दृष्टि से यह जल-संधि बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इराक, कतर और ईरान से तेल का निर्यात यहीं से होता है। यदि अमरीका और ईरान युद्ध में उलझते हैं तो यहाँ से तेल टैंकरों का गुजरना बन्द हो जायेगा जिससे पूरे विश्व में तेल की आपूर्ति में भारी कमी आयेगी और पूरी विश्व अर्थव्यवस्था डगमगा जायेगी। खुद अमरीका की अर्थव्यवस्था भी इससे अछूती नहीं रह पाएगी। इसलिए अमरीका चाहकर भी ईरान पर हमला नहीं कर सकता है। तेल की आपूर्ति पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को चलाने के लिए शरीर में खून की तरह काम करती है। तेल आपूर्ति के बन्द होने का मतलब पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का मरणासन्न हो जाना है।

अमरीका का मध्य-पूर्व में हमले का मकसद यहाँ के तेल भण्डारों पर कब्जा करना ही है। इसके लिए वह मध्य-पूर्व के देशों पर नाभिकीय हथियार रखने का आरोप लगाकर और आतंकवाद से लड़ने का बहाना बनाकर अपनी सेनाएँ उतारता रहा है। इस तरह उसने पूरे मध्य-पूर्व में अपने सैन्य अड्डों का जाल बिछा रखा है। इराक पर भी इसने अलकायदा से सम्बन्ध रखने और रासायनिक हथियार रखने का आरोप लगाकर हमला किया था। लेकिन बाद में उसके लगाये गये आरोप गलत साबित हुए और पूरी दुनिया में उसकी फजीहत हुई। सद्दाम हुसैन की हत्या कर इराक के शासन

पर कब्जा कर लेने के बावजूद भी अमरीका को इराकी जनता का भारी प्रतिरोध झेलना पड़ा। इराकी जनता ने अमरीका को वियतनाम की याद दिला दी। वियतनाम में हार अमरीका के इतिहास की ऐसी घटना है जिसको वह याद नहीं करना चाहता। एक छोटे से देश से मिली शर्मनाक हार अमरीका के लिए एक मानसिक व्याधि बन गयी है। वह एक अलग उपनिवेशवादी दौर था जब चन्द साम्राज्यवादी देशों ने दुनिया के बहुत बड़े हिस्से को गुलाम बना रखा था। लेकिन आज के आर्थिक नवउपनिवेशवादी दौर में जनता की चेतना इतनी उन्नत हो गयी है कि वह साम्राज्यवादी देशों द्वारा सेना के बल पर प्रत्यक्ष गुलाम बनाये जाने को स्वीकार नहीं कर सकती। फिर भी दुनिया के पिछड़े देशों पर साम्राज्यवादी देशों का आर्थिक वर्चस्व कायम है और पिछड़े देशों के पूँजीवादी शासक साम्राज्यवादी देशों के साथ गठजोड़ करके अपने देश की जनता का निर्मम शोषण कर रहे हैं।

कासिम सुलेमानी के साथ इराक के सैनिक कमाण्डर भी मारे गये। इससे इराक में अमरीका के प्रति गुस्सा और बढ़ गया है। इराक की संसद ने अमरीकी सैनिकों को अपने देश से निकालने का प्रस्ताव पारित कर दिया है। इराक के पूर्व प्रधानमंत्री, जिन्हें नवम्बर में सरकार विरोधी प्रदर्शनों के कारण अपने पद से हटना पड़ा था, उनका कहना है कि अमरीका के पास इराक से अपने सैनिक वापस बुलाने के अलावा और कोई विकल्प नहीं है। इराक की जनता भी अमरीकी हस्तक्षेप को और अधिक सहन नहीं करना चाहती है। अमरीकी ब्रिगेडियर जनरल विलियम सीवी ने अपनी इराकी समकक्ष को एक पत्र के माध्यम से बताया था कि अमरीकी सेना इराक छोड़ने की तैयारी कर रही है। लेकिन अमरीका के चेयरमैन ऑफ स्टाफ मार्क मिले ने बचाव करते हुए स्पष्ट किया कि यह महज एक ड्राफ्ट था और इसे भेजा नहीं गया, बल्कि गलती से चला गया था। यहाँ हम देख सकते हैं कि अमरीकी प्रशासन एक दुविधा का शिकार है कि सैनिक वापस बुलाया जायें या नहीं। इराक में अमरीका को आर्थिक नुकसान अधिक और फायदा कम हो रहा है, लेकिन सवाल अपनी चौधराहट बचाने का है। इसलिए अमरीकी राष्ट्रपति ट्रम्प ने इराक से अपने सैनिकों को हटाना इराक के लिए ही सबसे बुरा बताया है। यह हास्यास्पद है। इराक में अभी भी अमरीका के 5 हजार सैनिक तैनात हैं और युद्ध के दौरान यहाँ 4 हजार से अधिक अमरीकी सैनिक मारे जा चुके हैं। नाटो के अन्य देश, जैसे-- कनाडा, जर्मनी और रोमानिया ने इराक से अस्थायी तौर पर अपने सैनिकों को हटाने का फैसला किया है। इराक के साथ-साथ सीरिया और अफगानिस्तान से भी अमरीकी सैनिकों को हटाने की माँग पूरे जोर पर है।

सीरिया में भी असद-सरकार के खिलाफ इस्लामिक स्टेट की लड़ाई का अन्त हो चुका है। इस मामले में इस्लामिक स्टेट को अमरीका द्वारा दी गयी मदद भी काम नहीं आयी। यहाँ कुर्द लड़ाके भी असद सरकार के साथ अस्थायी समझौता करके इस्लामिक स्टेट के खिलाफ जंग में शामिल हो गये। ईरान समर्थित शिया नागरिक सेना और रूस की इस्लामिक स्टेट के आतंकवादियों के ऊपर बमबारी ने असद सरकार को जीत दिलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। अमरीका ने अचानक सीरिया से अपनी सेना हटाने का फैसला लेते हुए कहा कि वह सीरिया में इस्लामिक स्टेट को हरा चुका है। अमरीका के इस फैसले से उसके सहयोगी नाटो के देश भी स्तब्ध रह गये। यूएस इंस्टीट्यूट ऑफ पीस की विश्लेषक मोना याकोबियान ने ट्रम्प के दावे पर सन्देह जताते हुए कहा था कि इस्लामिक स्टेट के खिलाफ सैन्य अभियान अभी खत्म नहीं हुआ है। इस्लामिक स्टेट के खिलाफ लड़ाई अभी अन्त से बहुत दूर है। अमरीकी सरकार का ही अनुमान है कि सीरिया में अभी भी इस्लामिक स्टेट के 30 हजार लड़ाके हैं।

वर्ल्ड ट्रेड सेण्टर पर हमले के बाद अमरीका 2001 में अलकायदा और तालिबान से लड़ने अफगानिस्तान पहुँचा था। लेकिन आज अमरीका को तालिबान के साथ शान्ति वार्ता करने के लिए विवश होना पड़ रहा है। यह भी अमरीका की क्षीण होती शक्ति का एक उदाहरण है। सितम्बर 2019 में अफगानिस्तान में एक अमरीकी सैनिक के मारे जाने के कारण यह शान्ति वार्ता स्थगित कर दी गयी थी जिसे फिर से शुरू कर दिया गया है। अफगानिस्तान में भी अमरीका और नाटो के 4 हजार से अधिक सैनिक मारे जा चुके हैं जिसमें 2 हजार से अधिक अमरीकी हैं। आज भी अफगानिस्तान में अमरीका के 14 हजार सैनिक तैनात हैं। अफगानिस्तान में अमरीका की कठपुतली सरकार भी सुरक्षित नहीं है। उसका राज-काज राजधानी तक सिमट गया है। बाकी हिस्से में तालिबान का शासन चलता है। तालिबान आज अपनी सबसे मजबूत स्थिति में है। तालिबान की माँग है कि जब तक अफगानिस्तान से एक-एक अमरीकी सैनिक वापस नहीं चला जाता, वह किसी भी शान्ति समझौते को मानने के लिए तैयार नहीं है। इसलिए अमरीका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प वहाँ से अपने सैनिकों को वापस बुलाने पर सहमत हो गये हैं और अपनी इज्जत बचाने के लिए अमरीका को दोबारा महान बनाओ का नारा दे रहे हैं। इन घटनाओं से स्पष्ट है कि मौजूदा परिस्थिति में किसी देश पर हमला करके उस देश को गुलाम नहीं बनाया जा सकता है। मध्य-पूर्व के देशों की जनता के लगातार और पुरजोर विरोध के कारण अमरीका वहाँ अपने पैर जमाने में पूरी तरह सफल नहीं हो पाया है।

लीबिया में भी 2011 में गद्दाफी के मारे जाने के बाद से ही गृह युद्ध चल रहा है। मुअम्मर अल-गद्दाफी लीबियाई क्रान्ति

के नेता और नीति निर्माता थे। साम्राज्यवादी सैन्य संगठन नाटो की चाकरी करने वाले उनके ही देश के गद्दारों ने उनकी राजनीतिक हत्या कर दी थी। उन्होंने अपनी वसीयत में अपने समर्थकों से यह आह्वान किया था कि वे विदेशी हमलावरों के खिलाफ हमेशा प्रतिरोध संघर्ष चलाते रहें। मध्य-पूर्व के अन्य देशों की तरह लीबिया में भी लोग बेरोजगारी, महँगाई और साम्राज्यवाद परस्त आर्थिक नीतियों के खिलाफ सड़क पर आ गये थे जिसका गद्दाफी ने दमन कर दिया था। इसे साम्राज्यवादी देशों की मीडिया ने तानाशाही बताया और अमरीका को लोकतंत्र की स्थापना के नाम पर लीबिया के तेल भण्डारों पर कब्जा करने का मौका मिल गया। अप्रैल 2019 में एक बार फिर लीबियन नेशनल आर्मी के जनरल खलीफा हफ्तार ने लीबिया की राजधानी त्रिपोली पर हमला कर दिया था। लीबियन नेशनल आर्मी द्वारा राजधानी का घेराव अभी भी जारी है। स्थिति गम्भीर बनी हुई है। इस हमले के बाद से अमरीका को लीबिया से भी अपनी सैन्य टुकड़ियों को हटाना पड़ा था। लीबिया में अमरीका समर्थित सरकार है। लीबिया उत्तरी अफ्रीका का सबसे बड़ा तेल उत्पादक देश है। इसलिए तमाम साम्राज्यवादी देशों की निगाहें इस पर गड़ी हुई हैं और दिन-प्रतिदिन उनका हस्तक्षेप बढ़ रहा है। इन हस्तक्षेपों को ध्यान में रखते हुए लीबिया में संयुक्त राष्ट्र के सहायता मिशन के प्रमुख घासेन सलाम ने लीबिया में हस्तक्षेप न करने की अपील की है। उन्होंने यह भी कहा कि लीबिया केवल तेल, गैस या भू राजनीतिक कहानी नहीं है बल्कि वह एक मानवीय कहानी भी है।

साथ ही नाटो में गहराते अन्तर्विरोध के चलते भी अमरीका के लिए कई चुनौतियाँ खड़ी हो गयी हैं। नाटो के बीच का मतभेद तब और सतह पर आ गया, जब तुर्की ने अक्टूबर में सीरिया के कुर्दिश क्षेत्रों पर आक्रमण कर दिया और अमरीका को वहाँ से अपने सैनिक हटाने के लिए विवश होना पड़ा। तुर्की ने सीरिया की सीमा पर कुछ नगरों पर कब्जा कर लिया और तुर्की से कुर्दिश क्षेत्रों के बीच एक बफर क्षेत्र बनाने के लिए रूस से सौदा किया, जिसे रूसी और तुर्की सैनिकों द्वारा संचालित किया जायेगा। नाटो की दूसरी सबसे बड़ी सैन्य ताकत तुर्की ने रूस से एस-400 मिसाइल रक्षा प्रणाली खरीदकर अमरीका को दूसरा बड़ा झटका दिया। इससे अमरीका भड़क गया और उसने तुर्की को अपने एफ-35 लड़ाकू विमान सौदे से हटाने और सौदे पर प्रतिबन्ध लगाने की धमकी दी। लेकिन तुर्की ने अपना कदम वापस नहीं लिया और अमरीका को जवाब देते हुए कहा कि अगर अमरीका ऐसा करता है तो वह रूस से एसयू-57 जेट खरीद लेगा और प्रतिबन्ध की धमकी के जवाब में अपने देश में दो अमरीकी सैन्य ठिकानों को बन्द कर देगा। इस तरह तुर्की का अमरीका के खिलाफ जाना उसे मध्य-पूर्व में और कमजोर करता नजर आ रहा है।

मध्य-पूर्व पिछले दो दशकों से अन्तरराष्ट्रीय राजनीति का अखाड़ा बन गया है। इस क्षेत्र में रूस का बढ़ता हस्तक्षेप भी अमरीका के लिए खासा सिरदर्द बन गया है। सीरिया के बशर अल-असद सरकार को रूस का समर्थन प्राप्त है और रूस की तालिबान के साथ नजदीकियों की चर्चा भी होती रही है जो अमरीका के लिए परेशानी का सबब है। वहीं ईरान को रूस का पूरा समर्थन मिला हुआ है। रूस 1990 से पहले अमरीका का मुख्य शत्रु और साम्राज्यवादी प्रतिद्वन्दी था। दोनों देशों के बीच काफी लम्बा शीत युद्ध चला था। लेकिन 1990 के आसपास सोवियत रूस के विघटन के बाद उसकी ताकत कमजोर पड़ गयी थी। पुतिन के नेतृत्व में रूस एक बार फिर साम्राज्यवादी ताकत बनकर उभर रहा है और उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ बढ़ती जा रही हैं। उसका फिर से एक सैन्य शक्ति के रूप में उभरना अमरीका के वर्चस्व वाली एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था के लिए बड़ी चुनौती है। दूसरी ओर चीन भी एक नयी आर्थिक शक्ति के रूप में बहुत तेजी से उभर रहा है और आनेवाले वर्षों में दुनिया के शक्ति सन्तुलन में अहम भूमिका निभा सकता है। हालाँकि अभी चीन अमरीका के साथ किसी भी सम्भावित टकराव को टाल रहा है।

मध्य-पूर्व में पिछले दो दशकों के संघर्ष के बावजूद अमरीका किसी निर्णायक जीत पर नहीं पहुँच पाया है। सीरिया, इराक, अफगानिस्तान और मध्य-पूर्व के अन्य देशों में अपने हजारों सैनिकों की जान गँवाने और अकूत पैसा खर्च करने के बावजूद उसकी चाहत पूरी नहीं हो पायी है। ब्राउन यूनिवर्सिटी के वाटसन इंस्टीट्यूट ने 13 नवम्बर 2019 की अपनी एक रिपोर्ट में बताया कि अमरीका ने पेण्टागन हमले के बाद इराक, सीरिया, पाकिस्तान और अफगानिस्तान में युद्ध पर लगभग 454 लाख करोड़ रुपये खर्च किये हैं। युद्ध में सीधे तौर पर 8 लाख लोग मारे गये हैं जिनमें 3 लाख 35 हजार आम नागरिक हैं और लगभग 21 लाख लोगों को विस्थापित होना पड़ा है।

मध्य-पूर्व में आज भी अशान्ति की स्थिति बनी हुई है। पेट्रो-डॉलर का पूरी तरह प्रभुत्व स्थापित नहीं हो पाया है। हालाँकि अमरीका ने मध्य-पूर्व के देशों पर बम बरसाकर, आर्थिक प्रतिबन्ध लगाकर तथा अपने सैनिकों और विध्वंसक हथियारों की तैनाती करके पूरे इलाके को अपने कब्जे में लेने की पूरी कोशिश की ताकि पेट्रोलियम के इस विशाल क्षेत्र से बड़ी मात्रा में तेल की निकासी की जा सके। लेकिन युद्ध और कब्जे की रणनीति के दो दशक गुजर जाने के बाद भी अमरीका को इसमें कामयाबी नहीं मिल पा रही है और वह मध्य-पूर्व में लगातार पीछे हटने को मजबूर है।

बोलीविया में नस्लवादी तख्तापलट

-- प्रवीण कुमार

10 नवम्बर को बोलीविया में इवो मोरालेस की चुनी हुई सरकार का तख्तापलट कर दिया गया। इवो मोरालेस देश के पहले मूल निवासी राष्ट्रपति थे। वे पिछले 14 साल से देश की सत्ता सम्भाल रहे थे। 20 अक्टूबर को उन्हें चौथी बार देश का राष्ट्रपति चुना गया था। उन्होंने 46.35 प्रतिशत मत प्राप्त करके अपने निकटतम प्रतिद्वन्द्वी कार्लोस मेसा को 10 प्रतिशत से अधिक मतों से हराया था।

विपक्षी दक्षिणपन्थी और नस्लवादी पार्टियों, पुलिस और सेना के गठजोड़ ने उनकी जीत स्वीकार नहीं की और पूरे देश में अराजकता और खून-खराबे का माहौल तैयार कर दिया। विरोधियों ने उनकी हत्या करने पर 50 हजार डॉलर का ईनाम घोषित कर दिया। 8 नवम्बर को सेना अध्यक्ष विलियम कलीमान ने देश की जनता को खून-खराबे से बचाने के बहाने उनसे देश छोड़कर चले जाने की धमकीभरी गुजारिश की। 10 नवम्बर को मोरालेस मैक्सिको के राष्ट्रपति आनेस मैनुअल लापेज के आग्रह पर उपराष्ट्रपति अल्वारो गर्सिया के साथ मैक्सिको चले गये।

मोरालेस के विरोधियों ने उन पर चुनाव में धाँधली करने का आरोप लगाया था। इस शिगूफे की शुरुआत अमरीका से हुई थी। बाद में तख्तापलट में अमरीका की भूमिका दिन के उजाले की तरह साफ हो गयी। दरअसल अमरीकी नीतियों को स्वीकार न करने वाले देशों में दख्तापलट करवाना अमरीका की पुरानी रणनीति है और इसके सैकड़ों उदाहरण इतिहास में भरे पड़े हैं।

क्यूबा, वेनेजुएला, मैक्सिको, अर्जेण्टीना समेत लातिन अमरीका के अधिकांश देशों ने बोलीविया में तख्तापलट की निन्दा की है और अमरीका को इसका असली षड्यंत्रकारी बताया है। अर्जेण्टीना के अलबर्तो फर्नान्देज ने कहा है कि इस घटना ने पूरे क्षेत्र को 1970 के दशक के गन्दे दौर में पहुँचा दिया है, जब लातिन अमरीका में अमरीकी पिट्ठू दक्षिणपन्थी सैन्य शासकों की सरकारें थीं। लातिन अमरीका के एकमात्र देश ब्राजील के राष्ट्रपति बोलसेनारो ने इस तख्तापलट का समर्थन किया है, जो खुद एक तख्तापलट के जरिये सत्ता तक पहुँचे हैं।

2006 में जब मोरालेस ने पहली बार बोलीविया की सत्ता सम्भाली थी, उसी समय से अमरीकी शासक वर्ग उनके शासन को उखाड़ फेंकने की लगातार कोशिश कर रहा था। सन् 2008 में बोलीविया की आर्थिक राजधानी सान्ताक्रूज के नस्लवादी गिरोहों और पूँजीपतियों के साथ मिलकर अमरीका देश के दो टुकड़े करने की असफल साजिश भी कर चुका है। मोरालेस को इस बार के चुनाव में भी अपनी जीत पर दृढ़ विश्वास था, इसलिए उसने अपने विरोधियों के पसन्दीदा, अमरीकी नेतृत्व वाले संगठन ओएएस (ऑर्गेनाइजेशन ऑफ अमरीकन स्टेट्स) के पर्यवेक्षकों को चुनाव की निगरानी करने के लिए निमंत्रित किया था। यह संगठन लातिन अमरीका में हर सम्भव तरीके से अमरीकी हितों को पूरा करने के लिए बदनाम है।

चुनाव के दौरान ओएएस के पर्यवेक्षकों ने चुनाव में गड़बड़ी की कोई सूचना नहीं दी। बाद में मतों की गिनती के दौरान जब मोरालेस की जीत स्पष्ट दिखायी देने लगी, तब यही संगठन धाँधली का शोर मचाने लगा। अमरीकी कॉर्पोरेट हितैषी मीडिया, जिसका प्रमुख उद्देश्य पैसे के बदले सहमति गढ़ना है, उसके लिए इतना संकेत काफी था। सारे मीडिया संस्थान एक सुर में इवो मोरालेस और उनकी पार्टी एमएएस (मूवमेंट टुवार्ड् सोशलिज्म) के चरित्र हनन के काम में रम गये। हालाँकि किसी ने भी आज तक चुनाव में धाँधली का सबूत देने की जहमत मोल नहीं ली।

20 अक्टूबर को मोरालेस के चौथी बार राष्ट्रपति चुने जाने पर यह तय हो गया कि उन्हें चुनाव के रास्ते सत्ता से बाहर करना नामुमकिन है। अब तक किसी भी पार्टी न दुबारा चुनाव कराने की माँग नहीं की थी, उलटे मोरालेस ने ही विपक्ष के सामने दुबारा चुनाव कराने का प्रस्ताव रखा, जिसे विपक्ष ने नामंजूर कर दिया, क्योंकि मामला चुनाव में धाँधली का था ही नहीं, असली मकसद तो मोरालेस को सत्ता से बाहर करना था, जो चुनाव से सम्भव नहीं था। अब तख्तापलट ही एक मात्र रास्ता था।

अमरीका के पुराने पिट्ठू सान्ताक्रूज के नस्लवादी गिरोह अपने काम में लग गये। एमएएस नेताओं पर सरेआम हमले होने लगे। मोरालेस के समर्थक मूल निवासी मजदूर और किसान नेताओं और कार्यकर्ताओं पर हमला होने लगा, उनके घर जलाये जाने लगे। पुलिस ने इस मामले में हस्तक्षेप करने से हाथ खींच लिया। घटनाएँ तेजी से सभी शहरी क्षेत्रों में फैल गयीं। मोरालेस ने जब पुलिस अधिकारियों को नस्लवादी गिरोहों के उत्पात पर कार्रवाई करने का आदेश दिया तो उन्होंने आदेश मानने से इनकार कर दिया। और भी आगे बढ़कर पुलिस खुद नस्लवादी गिरोहों के साथ उपद्रव में शामिल

हो गयी। हालात यहाँ तक खराब हो गये कि मोरालेस की बहन की हत्या की कोशिश की गयी और उनका घर जला दिया गया।

राष्ट्रव्यापी उपद्रव यानी मोरालेस के तख्तापलट की कमान अब सान्ताक्रूज के एक नस्लवादी लम्पट, सीआईए के एजेण्ट फर्नान्दो कमाचो के हाथ में थी, जो 2008 में देश के दो हिस्से करने के अमरीकी षड्यंत्र में भी शामिल रह चुका था। विकीलीक्स फर्नान्दो कमाचो और कार्लोस मेसा के अमरीकी खुफिया संस्थाओं और यूरोपीय नस्लवादी संगठनों से जुड़े होने के दस्तावेज पहले ही सार्वजनिक कर चुका है। अमरीका में ही सामने आयी रिपोर्टों में यह भी खुलासा हो चुका है कि तख्तापलट से पहले बोलीविया के उच्च पुलिस और सैन्य अधिकारी अमरीका के सम्पर्क में थे और उन्हें कद के अनुरूप एक लाख डॉलर से 10 लाख डॉलर तक की रिश्वत दी गयी थी। यह मात्र संयोग नहीं कि सेना और पुलिस दोनों के सर्वोच्च अधिकारी अमरीका में प्रशिक्षण लिये हैं और दूतावास की सेवाओं से जुड़कर अमरीका में कई साल बिताये हैं।

जब पूरे देश पर पुलिस और हथियारबन्द नस्लवादी गिरोहों के गठजोड़ का आतंक छा गया और यह स्पष्ट हो गया कि एमएएस के कार्यकर्ता हथियारबन्द पलटवार करने में सक्षम नहीं हैं, तो सेना अध्यक्ष ने राष्ट्रपति मोरालेस से देश में अमन के लिए देश छोड़कर चले जाने की धमकीभरी गुजारिश की। अब मोरालेस के सामने दो रास्ते थे-- या तो वह चिली के महान नेता की तरह हाथ में पिस्तौल लेकर लड़ते हुए शहीद हो जायें या कुछ समय के लिए देश छोड़कर चले जायें और फिर से सत्ता प्राप्ति की तैयारियाँ करें। उन्होंने दूसरा रास्ता चुना। मोरालेस ने अपने देश की जनता से जल्द ही वापस लौटने तथा अपनी अन्तिम साँस तक साम्राज्यवाद और सामाजिक गैरबराबरी के खिलाफ संघर्ष करने का वादा किया है।

बोलीविया में स्पेनी उपनिवेशी शासन की समाप्ति से लेकर 2006 तक की लगभग एक सदी तक अमरीकी नव-उपनिवेशवादी पिट्ठू सरकारों का दौर रहा है, जिसमें देशी सरकार का काम केवल अमरीका से बनकर आयी नीतियों को लागू करना था। इस दौर की एक झलक हम एदुआर्दो गालिआनो की प्रसिद्ध पुस्तक 'लातिन अमरीका के रिसते जख्म' में देख सकते हैं। लातिन अमरीका में बोलीविया सबसे पिछड़ा और गरीब देश है। यहाँ की मूल निवासी आबादी का बड़ा हिस्सा खेती से जुड़ा है। इवो मोरालेस एक किसान परिवार में पैदा हुए थे और कोका चुआने वाले किसानों के आन्दोलन के जरिये 1990 के दशक में राजनीति में आये। उस समय मूल निवासी जनता बेलगाम आर्थिक शोषण के साथ-साथ अकल्पनीय नस्ली सामाजिक उत्पीड़न का शिकार थी। आलम यह था कि कुल आबादी के 60 प्रतिशत हिस्से, मूल निवासियों को सरकारी दफ्तरों में सीधे प्रवेश की इजाजत नहीं थी। उन्हें कीटनाशक से नहलाकर अन्दर घुसाया जाता था। मूल निवासियों में साक्षरता दर बहुत कम थी। अपने ही देश में उनकी भाषा को मान्यता नहीं मिली थी। कुल मिलाकर यह बहुसंख्य आबादी बीसवीं सदी के अन्तिम दशक तक अपने ही देश में यूरोपीय नस्ली उत्पीड़न झेलते हुए पशुवत जीवन जीने के लिए मजबूर थी।

2006 में सत्ता सम्भालने के बाद मोरालेस ने बोलीविया को एक बहुभाषी, बहुराष्ट्रीयताओं का देश घोषित किया। सभी के लिए समान नागरिकता का अधिकार सुनिश्चित किया। सभी समूहों की भाषाओं को एक समान मान्यता दी। लिंग भेद, निरक्षरता और बहुत सी गलत कबीलाई परम्पराओं के खिलाफ राष्ट्रीय स्तर पर जबरदस्त अभियान चलाये, जिनके चौकानेवाले नतीजे सामने आये। उदाहरण के तौर पर-- मोरालेस के मात्र 14 साल के शासन के बाद बोलीविया आज लगभग 100 प्रतिशत साक्षर देश है, जिस लक्ष्य को भारत आजादी के 73 साल में भी हासिल नहीं कर पाया है। पिछले 14 सालों में उन्होंने अमरीकी साम्राज्यवाद पर न केवल अपने देश से नकेल कसी, बल्कि उसे पूरे लातिन अमरीका से भगाने के सामूहिक प्रयास में हिस्सेदारी की। बोलीविया की सत्ता सम्भालते वक्त उन्होंने अपने देश की जनता से नव उपनिवेशवादी राज्य और नव उदारवादी मॉडल का नाश करने का वादा किया था, उनकी नीतियों से यह जाहिर है कि वे कभी अपने वादे से पीछे नहीं हटे।

ऐसे साम्राज्यवाद विरोधी जनपक्षीय सरकार के मुखिया इवा मोरालेस का तख्तापलट करने वाले नस्लवादी गिरोहों की सत्ता को अगर अमरीकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प ने झटपट मान्यता दे दी, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। बोलीवियाई जनता के खिलाफ अपराध करने की दोषी सेना और पुलिस को उसने लोकतंत्र का रक्षक बताया है। तख्तापलट का गुणगान करते हुए उसने अपने अगले षड्यंत्र के लक्ष्य भी घोषित कर दिये। उसने कहा कि 'इस घटना ने वेनेजुएला और निकारागुआ की सरकारों को यह सन्देश दे दिया है कि लोकतंत्र और जनता की इच्छा जीतेगी।' उसके इस कथन में लोकतंत्र के स्थान पर साम्राज्यवाद और जनता के स्थान पर अमरीकी पूँजीपति रखने से अर्थ ज्यादा स्पष्ट हो जायेगा।

10 नवम्बर के बाद अमरीकी शासकों ने बोलीविया में जिन गिरोहों को सत्तासीन किया है, उन्होंने लोकतंत्र के प्रति अपनी गद्दारी स्पष्ट कर दी है। मोरालेस के राष्ट्रपति पद छोड़ने के 24 घण्टे बाद ही अचानक एक ईसाई धर्मान्ध सीनेटर जीनिन अनेज, जिसकी पार्टी को चुनाव में 5 प्रतिशत मत भी नहीं मिले हैं, अचानक राष्ट्रपति की पोशाक में, हाथ में बड़ी सी बाइबिल लेकर राष्ट्रपति भवन के छज्जे पर प्रकट हुई और खुद को बोलीविया का आन्तरिक राष्ट्रपति घोषित कर दिया। लोकतंत्र की इस देवी के मुख से फूटे पहले लोकतांत्रिक शब्द यूँ थे-- "यह बाइबिल हमारे बहुत काम की है... हमारी ताकत गॉड है... गॉड ही सत्ता है।" खुद अमरीका का विश्व प्रसिद्ध अखबार *द गार्जियन* इन्हें 'नस्लवादी' और *न्यूयार्क टाइम्स* 'ढींठ महिला' कहकर सम्बोधित करता है। नव वर्ष पर इस लोकतंत्र की देवी ने बोलीवियाई जनजातीय समूह

'अमारा' को शैतान कहा है और बताया है कि मूल निवासी जूता पहनने के लायक भी नहीं हैं।

तख्तापलट के मुख्य षड़यंत्रकारी फर्नान्दो कमाचो तो जीनिन अनेज से भी दो कदम आगे निकल गये। सीआईए के साथ तो इनके सम्बन्ध जगजाहिर हैं ही, साथ ही इनका नाम पनामा पेपर काण्ड में भी खूब उछला है। ये खुद को नस्लवादी अति दक्षिणपन्थी कहते हैं, पेशे से व्यापारी हैं। इन्होंने राष्ट्रपति भवन में अपने पहले भाषण में कहा कि "बाइबिल राष्ट्रपति भवन में वापस आ गयी है। पचामामा (मूल निवासियों की देवी-- धरती माँ) की अब कभी भी राष्ट्रपति भवन में वापसी नहीं होगी... बोलीविया ईसा मसीह का है।" लोकतंत्र के इस नव नायक ने पुलिस और सेना की मौजूदगी में बोलीविया के बहुरंगी राष्ट्रीय ध्वज (विषाहालाला) को फाड़ा और ईसाइयत के झण्डे को ऊँचा उठाने का वादा किया।

धन्य हैं अमरीकी शासक वर्ग द्वारा नियुक्त किये गये लोकतंत्र के बिजूखे!

दरअसल साम्राज्यवादियों के लिए लोकतंत्र के इन ठेकेदारों की हैसियत उनके बंगले के चौकीदार से ज्यादा नहीं होती, जिसे वे जरूरत के अनुसार घर के अगले दरवाजे या पिछले दरवाजे पर खड़ा कर लेते हैं। दुनिया भर में तानाशाहों को प्रश्रय देने वाले अमरीका के लिए लोकतंत्र उसके साम्राज्यवादी मंसूबों को पूरा करने के अलावा कोई मायने नहीं रखता। इवो मोरालेस की गलती यह थी कि वे बोलीविया को एक साम्राज्यवाद मुक्त, सम्प्रभु लोकतांत्रिक राष्ट्र बनाना चाहते थे-- उस बोलीविया को जिसका शासक वर्ग पूँजीपति वर्ग है, जो पहले ही अमरीकी साम्राज्यवाद के साथ शत्रु-सहयोगी सम्बन्धों में बँधा है, जिसका राष्ट्र प्रेम और राष्ट्रीय सम्प्रभुता मण्डी में पैदा होती है और मण्डी में ही तिरोहित हो जाती है, जिसके लिए मुनाफे से बड़ा कोई प्रभु नहीं। वे जिस पूँजीपति वर्ग की सम्प्रभुता चाहते थे, उसी ने उनकी पीठ में छुरा भोंका।

इवो मोरालेस की नीतियों ने छोटी और तात्कालिक ही सही, बोलीविया के पूँजीपति वर्ग और उसके शत्रु सहयोगी साम्राज्यवादी पूँजीपति वर्ग के मुनाफे पर चोट की थी। उनकी सरकार ने तेल, प्राकृतिक गैस जैसी खनिज सम्पदाओं के व्यापार सम्बन्धी पुराने समझौतों को रद्द करके नये समझौते किये थे, जिनमें सरकार के राजस्व का हिस्सा बढ़ा दिया गया था। पूँजीपति वर्ग के मुनाफे में हुई इस कटौती से जो रकम हासिल हुई, उसे शिक्षा, चिकित्सा, खाद्य सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा आदि की जन कल्याणकारी योजनाओं पर खर्च किया गया। इसके चलते पिछले 14 सालों में देश की गरीबी 50 प्रतिशत तक कम हुई और बोलीविया लातिन अमरीका में सबसे तेज आर्थिक वृद्धि वाला देश बन गया। उन्होंने विश्व बैंक और विश्व मुद्रा कोष पर अपनी कर्ज निर्भरता को कम करके क्षेत्रीय देशों के बीच कर्ज के लेन-देन को बढ़ावा दिया; लातिन अमरीकी देशों को मिलाकर एक क्षेत्रीय बैंक का निर्माण किया, जिसके चलते साम्राज्यवाद पर निर्भरता घटी।

बोलीविया एक खनिज सम्पन्न देश है। यहाँ तेल, प्राकृतिक गैस, टिन, लीथियम जैसे मूल्यवान खनिजों के विशाल भण्डार मौजूद हैं। दुनिया में कुल ज्ञात लीथियम का 70 प्रतिशत भण्डार बोलीविया में है। इसके खनन के विकास के लिए मोरालेस ने चीन के साथ 2.5 अरब डॉलर का एक समझौता किया था। शायद यही समझौता मोरालेस के तख्तापलट का सबसे बड़ा कारण बना। क्योंकि आज लीथियम एक बहुत महत्त्वपूर्ण खनिज बन चुका है। छोटे आकार और उच्च क्षमता की बैटरियाँ जैसे मोबाइल, कम्प्यूटर, इलेक्ट्रॉनिक वाहन आदि की बैटरियाँ बनाने में इसका इस्तेमाल होता है। लीथियम जिसके नियंत्रण में होगा, उसका विश्व अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण भी बढ़ जाएगा और यह अवसर चीन को मिले, अमरीका ऐसा नहीं होने देगा।

मोरालेस ने पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में भी फिदेल कास्त्रो और ह्यूगो शावेज के साथ मिलकर काम किया था। कोचाबाम्बा का प्रसिद्ध धरती माँ का अधिकार पत्र इन्हीं तीनों नेताओं के प्रयासों का परिणाम था। अपने देश में उन्होंने उद्योगों और खनन कम्पनियों के प्रदूषण फैलाने पर बहुत हद तक रोक लगायी और दूसरे देशों पर इसके लिए दबाव बनाया।

मोरालेस लातिन अमरीका की 'गुलाबी लहर' के नेताओं में से एक हैं। वास्तव में यह उभार अपनी प्रकृति में सुधारवादी और प्रगतिशील था। वे समाजवाद तो चाहते थे, लेकिन पूँजीवाद का नाश करके नहीं, बल्कि पूँजीवादी संसद के रास्ते, क्रान्ति के जरिये नहीं, सुधार के जरिये। लातिन अमरीका की विशिष्ट परिस्थितियों से पैदा हुए इस आन्दोलन ने एक ऐसे दौर में, जब समाजवादी गढ़ ढह चुके हैं, साम्राज्यवाद के अश्वमेधी घोड़े को पकड़ लेने की हिम्मत की और साम्राज्यवाद के सरगना अमरीका को सीधे चुनौती दी।

इवो मोरालेस को साम्राज्यवादियों और उनके पिट्ठू देशी पूँजीपति वर्ग ने भले ही देश छोड़ने पर मजबूर कर दिया हो, लेकिन उनकी समर्थक बहुसंख्यक मेहनतकश जनता आज भी बोलीविया की सड़कों पर संघर्ष कर रही है।

छपते-छपते : लगातार चल रहे जनआन्दोलन के दबाव में बोलीविया में 3 मई को नये चुनाव कराये जाने की घोषणा कर दी गयी है। इवो मोरालेस ने अपनी पार्टी एमएएस के नेता और पूर्व आर्थिक मामलों के मंत्री लुइस एर्स को राष्ट्रपति और पूर्व विदेश मंत्री डेविड चोकहुंका को उपराष्ट्रपति के प्रत्याशी के तौर पर चुनाव लड़ाने का फैसला किया है। इवो अभी अर्जेण्टीना में निर्वासित जीवन बिता रहे हैं, जहाँ से उन्होंने 'हथियारबन्द मिलीशिया' के गठन की बात कही। विवाद होने पर उन्होंने अपने शब्द वापस ले लिये। ऊँट किस करवट बैठेगा यह आने वाला समय बतायेगा, लेकिन यह स्पष्ट है कि साम्राज्यवादियों की राह आसान नहीं है।

बोलीविया में तख्तापलट : एक परिप्रेक्ष्य

दिसम्बर 1973 में, मंथली रिव्यू के सम्पादक पॉल एम स्वीजी, जिन्होंने चिली की कई यात्राएँ की थीं और वे सल्वाडोर अलेन्दे के मित्र थे, उन्होंने चिली में सैन्य तख्तापलट के बारे में "चिली : द क्वेश्चन ऑफ पावर" शीर्षक से एक लेख लिखा था जिसमें बताया था कि "चिली की त्रासदी इस बात की पुष्टि करती है कि क्या होना चाहिए था और जो कई लोगों को स्पष्ट था कि समाजवाद के लिए शान्तिपूर्ण रास्ते जैसी कोई चीज नहीं होती है।" निश्चित रूप से उनका यह मतलब नहीं था "कि समाजवाद के लिए संघर्ष में केवल हिंसक साधन ही उचित और प्रभावी होते हैं, "बल्कि यह कि "समाजवाद के रास्ते में हिंसक टकराव अवश्यम्भावी है"-- यह हमेशा प्रतिक्रियावादी ताकतों द्वारा शुरू की जाती है जो अपनी शक्ति को खतरे में पड़ा देखते हैं। "इसका अर्थ है कि समाजवादी रणनीति और रणकौशल के सभी चरणों में हिंसक टकराव का मुद्दा केन्द्रीय होना चाहिए।" (पॉल एम स्वीजी, "चिली : द क्वेश्चन ऑफ पावर," मंथली रिव्यू 25, संख्या 7, दिसम्बर 1973)

इसलिए, उन्होंने तर्क दिया कि 1970 के दशक की शुरुआत में चिली में सैन्य समस्या का समाधान करने की पॉपुलर यूनिटी सरकार की रणनीति होनी चाहिए थी--

"प्रतिक्रियावादी अधिकारियों को पद से हटा देना चाहिए था, वफादार लोगों को प्रमुख कमान पदों पर पदोन्नत किया जाना चाहिए था; सूचीबद्ध पुरुषों और नॉन-कमीशण्ड अधिकारियों के वेतन, रहने की स्थिति और लोकतांत्रिक अधिकारों का विस्तार और सुधार किया जाना चाहिए था; राजनीतिक शिक्षा को प्रशिक्षण कार्यक्रमों में शामिल किया जाना चाहिए था; और शायद सबसे महत्त्वपूर्ण चिली की सेना और संयुक्त राज्य अमरीका के बीच सभी सम्पर्कों को बिना शर्त समाप्त कर देना चाहिए था। उसी समय, पॉपुलर यूनिटी प्रशासन को एक लोकप्रिय मिलिशिया को संगठित, हथियारबन्द और प्रशिक्षित करना शुरू कर देना चाहिए था जो सेना और राष्ट्रीय पुलिस (कारबिनरोस) द्वारा वहन की जाने वाली जिम्मेदारियों को अधिक से अधिक अपने ऊपर ले सके। एक साथ किये गये ये सभी उपाय कमोबेश तेजी से पुराने बुर्जुआ सैन्य प्रतिष्ठान को समाजवादी ताकतों के नियंत्रण में ले आते। जब यह लक्ष्य हासिल हो जाता, चिली समाज को पूँजीवाद से समाजवाद में बदलने की प्रक्रिया तेजी से शुरू हो जाती।"

स्वीजी ने संकेत दिया कि इस तरह आगे बढ़ने के बजाय अलेन्दे प्रशासन ने इसके ठीक विपरीत किया--

"जनरलों और एडमिरलों के साथ नरमी बरती गयी थी तथा उन्हें आर्थिक-राजनीतिक जिम्मेदारियाँ देने के प्रयास किये गये थे। जब क्रान्तिकारी वामपंथियों के आन्दोलन ने सैनिकों की कतारों के बीच राजनीतिक काम करने की कोशिश की, तो सरकार ने कठोर कदम उठाये-- इस तरह की गतिविधि के लिए अलेन्दे के अपने भतीजे को जेल भेज दिया गया। चिली सेना को अमरीकी सहायता देने की अनुमति ऐसे समय में दी गयी थी, जब वाशिंगटन अमरीकी बैंकों और अन्तरराष्ट्रीय ऋण देने वाली एजेंसियों के जरिये चिली की सरकार को ऋण देने में बाधा डाल रहा था।"

11 सितम्बर, 1973 के तख्तापलट से पहले के अन्तिम महीनों में, अलेन्दे प्रशासन ने कांग्रेस को वीटो के बिना एक कानून पारित करने की अनुमति दी, जिसमें सशस्त्र बलों को कहीं भी हथियारों की तलाशी लेने का अधिकार दिया गया, जिसके फलस्वरूप श्रमिकों के खिलाफ उनके कारखानों और घरों में ही आतंक का एक शाश्वत राज कायम हुआ। संक्षेप में, पॉपुलर यूनिटी सरकार की सैन्य नीति अपने बीच दुश्मन और साम्राज्यवाद के पाँचवें स्तम्भ को न केवल बर्दाश्त करने बल्कि बढ़ाने और मजबूत करने वाली थी।

अलेन्दे के खिलाफ तख्तापलट के बारे में स्वीजी की प्रतिक्रिया आज बहुत अलग, लेकिन सम्बन्धित मामले में सामने है, जब नवम्बर 2019 में राष्ट्रपति इवो मोरालेस की बोलीवियाई सरकार और समाजवादी आन्दोलन के खिलाफ तख्तापलट की घटना को अंजाम दिया गया। 10 नवम्बर को सेना ने मोरालेस और बोलीवियाई राष्ट्रपति के उत्तराधिकार की पूरी पीढ़ी को सत्ता से हटा दिया था, मोरालेस की चुनावी जीत के बाद निम्न-मध्य वर्ग से उत्पन्न और दक्षिणपन्थी राजनीति से प्रोत्साहित, फासीवादी भीड़ द्वारा देश के टुकड़े कर डालने को बढ़ावा दिया गया था। इसमें एक प्रमुख व्यक्ति लुइस फर्नाण्डो कैमाचो, जो एक फासीवादी अर्धसैनिक नेता और अमरीकी समर्थन प्राप्त करोड़पति था, उसका बड़ा हाथ था। मोरालेस, उनकी बहन और विभिन्न सरकारी मंत्रियों के घरों को जला दिया गया था। फासीवादियों ने विण्टो की मेयर पेट्रीसिया एर्स को बन्धक बना लिया, उनके बाल काट दिये गये, उन्हें लाल रंग से रंग दिया गया और उन्हें घण्टों तक सड़कों पर घसीटा गया, जिससे वह अपने घुटनों पर झुककर इस्तीफा देने के लिए मजबूर हो गयीं। जैसा कि मंथली रिव्यू लेखक एटीलियो बोरोन ने बताया है कि ये आतंकवादी

कार्य कैसे सम्भव हैं, "सुरक्षा बलों" (सेना और पुलिस) ने "घटनास्थल से हटकर फासीवादी भीड़ के अनियंत्रित हिंसा-प्रदर्शन के लिए मैदान छोड़ने का विकल्प चुना-- जैसे कि उन्होंने यूक्रेन, लीबिया, इराक, सीरिया में तख्तापलट के लिए किया था या बाकी मामले में ऐसा करने का प्रयास किया था... और इस तरह वे जनता को डराते हैं।... यह एक नया सामाजिक-राजनीतिक पैंतरा है-- 'सफाया करके' सैन्य तख्तापलट। "प्रतिक्रियावादी गिरोहों को भर्ती करने और उनके कानून को लागू करने का अधिकार दिया गया" (एटिलियो बोरोन," द कू इन बोलीविया : फाइव लेसनस, "ओरिनोको ट्रिब्यून, 11 नवम्बर, 2019;" बोलीवियन मेयर, पेट्रीसिया एर्स, कवर्ड इन पेण्ट, ड्रैगड थ्रू द स्ट्रीट बाई राइट-विंग फासिस्ट, ओरिनोको ट्रिब्यून, 7 नवम्बर, 2019)।

बोलिविया के सशस्त्र बलों के कमाण्डर विलियम्स कलीमन, जिन्होंने "सुझाव दिया था" कि मोरालेस के तख्तापलट की योजना जॉर्जिया के फोर्ट बेनिंग में स्थित स्कूल ऑफ अमरीका में बनायी गयी थी, सुरक्षा बलों के भीतर अन्य तख्तापलट करने वाले भी थे। (कुछ को एफबीआई द्वारा प्रशिक्षित भी किया गया था।) बाद में कलीमन ने बोलीविया के स्व-नियुक्त "अन्तरिम राष्ट्रपति" दक्षिणपन्थी राजनीतिज्ञ जीनिन ओनेज को अपना समर्थन देने का वादा किया है। चुनाव से कुछ समय पहले, अवैध तरीके से हथियारों और गोला-बारूदों को संयुक्त राज्य अमरीका के विभिन्न स्थानों से सामानों के गुप्त खेपों में बोलीवियाई दक्षिणपन्थी ताकतों तक पहुँचाया गया था। सुरक्षा बलों ने निहत्थे प्रदर्शनकारियों पर गोली बरसाने के लिए बख्तरबन्द वाहनों और हेलीकॉप्टरों को तैनात किया। 25 नवम्बर, 2019 तक दर्जनों लोग मारे गये और कई घायल हुए। मोरालेस को मेक्सिको में शरण लेनी पड़ी।...

जैसा कि बोरोन द्वारा समझाया गया था, यह सब सीधे अमरीकी साम्राज्यवादी राज्य के नवीनतम राजनीतिक-सैन्य नियमावली से निकला था। शिक्षाविदों या पत्रकारों की आड़ में इन नियमावलियों को विभिन्न अमरीकी एजेंसियों और उनके प्रवक्ता द्वारा प्रकाशित कराया गया। ये "नियमावलियाँ" निर्देश देती हैं कि तानाशाही, भ्रष्टाचार के आरोपों और चरित्रहनन के विभिन्न रूपों के जरिये एक लोकप्रिय, चुने हुए नेता की प्रतिष्ठा को व्यवस्थित रूप से कैसे कम किया जाये, ताकि वामपन्थ का समर्थन कमजोर किया जा सके। इसके अलावा, ये नियमावलियाँ तख्तापलट के राजनीतिक और सैन्य ठिकानों को तैयार करने के बारे में कदम-दर-कदम निर्देश प्रदान देती हैं। यहाँ तक कि अमरीकी साम्राज्य द्वारा तैयार किये गये और दक्षिणपन्थी खेमें में प्रसारित इन नियमावलियों और निर्देशों के बारे में थोड़ी सी भी जानकारी यह बात साबित करती है कि बोलिविया में पुलिस और सेना जैसे संस्थानों को कभी भी सुरक्षा और सार्वजनिक व्यवस्था नहीं सौंपी जानी चाहिए, जो साम्राज्यवाद और उसके लठैतों के जरिये बनाये गये हैं।... जब ईवो मोरालेस के खिलाफ आक्रमण शुरू किया गया था, तब फासीवादियों के तुष्टीकरण की नीति अपनायी गयी और उनके उकसावों का जवाब नहीं दिया गया था। इसने उनके साहस को बढ़ाने और दाँव लगाने का काम किया-- पहले, मतपत्र की माँग करें; बाद में, धोखाधड़ी और नये चुनाव की; अगला चुनाव करवाएँ लेकिन ईवो के बिना (ब्राजील में, लूला के बिना); बाद में, ईवो के इस्तीफा की माँग आखिरकार, ब्लैकमेल स्वीकार न करने पर पुलिस और सेना की मिलीभगत से आतंक मचाया गया और ईवो को इस्तीफा देने के लिए मजबूर किया गया। नियमावलियों से, सभी कुछ नियमावलियों से। हम इन पाठों को कब सीखेंगे?

(मंथली रिव्यु, जनवरी 2020 के सम्पादकीय का अंश)

सियाचिन में तैनात सैनिकों के बारे में कैग रिपोर्ट

कैग संस्था ने सियाचिन में तैनात सैनिकों की हो रही आपूर्ति पर एक रिपोर्ट पेश की है। इस रिपोर्ट में साल 2015 से 2018 के बीच सैनिकों को दी गयी सुविधाओं का लेखा-जोखा लिया गया है। चारों तरफ से घिर जाने पर सरकार ने इस रिपोर्ट को पुराना कहकर खारिज करने के लिए काफी हाथ-पैर मारा लेकिन यह बात साफ हो गयी है कि देश की राष्ट्रवादी सरकार सीमा पर तैनात सैनिकों को जरूरी साजो-सामान मुहैया कराने में असफल रही है। तथाकथित राष्ट्रवादियों की सच्चाई इससे पहले भी कई बार सामने आ चुकी है। कारगिल युद्ध के समय ताबूत आयात घोटाला भी ऐसी ही एक राष्ट्रवादी सरकार पर धब्बे के समान है।

मौजूदा रिपोर्ट में सैनिकों के पास ठण्ड से पैर बचाने के बूट, स्वस्थ रहने के लिए जरूरी पौष्टिक भोजन, ठण्ड से बचने के लिए कपड़े और सूरज की कड़ी धूप की रोशनी से बचने के लिए चश्मों आदि की कमी के बारे में बताया गया है। द टेलीग्राफ की एक रिपोर्ट के अनुसार भारतीय सशस्त्र सेना बल (बीएसफ) के 90 हजार सैनिकों और अन्य अधिकारियों को भत्ते नहीं जाएँगे। इसका कारण फण्ड की कमी बताया जा रहा है।